संवाद

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। शनिवार, 19 अक्टूबर 2019

नवाचार को नमस्कार

खोजी रुझान को बढ़ावा देने का अभियान

नीति आयोग ने गुरुवार को पहला 'इंडिया इनोवेशन इंडेक्स' जारी किया जिसमें कर्नाटक ने प्रमुख राज्यों की श्रेणी में, दिल्ली ने केंद्र शासित प्रदेशों में और सिक्किम ने पहाड़ी राज्यों में पहला स्थान हासिल किया है। ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स की तर्ज पर तैयार इस सूचकांक का मकसद राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में इनोवेशन से जुड़ी व्यवस्था का आकलन करना है ताकि इसके आधार पर नीति निर्माता अपनी योजनाओं को दिशा दे सकें।

इंडिया इनोवेशन इंडेक्स

नीति आयोग यह परखने की कोशिश कर रहा है कि किस राज्य में सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सरकार और समाज द्वारा क्या नई पहलकदमियां की जा रही हैं। बिजनेस के ढांचे से लेकर तकनीक तक में किस तरह के नए काम किए जा रहे हैं। यह भी कि राज्य के प्राकृतिक संसाधनों, तकनीक और मानव संसाधन के बीच कैसा तालमेल है। नए काम में किस तरह की मुश्किलें सामने आईं और इसके लिए क्या उन्होंने किसी तरह की मदद ली। यह भी कि नई पहलकदमियों ने वहां के लोगों के जीवन पर क्या असर डाला। यह सब जानने के लिए दो प्रदर्शन के पैमाने और पांच सक्षम बनाने वाले पैमाने तय किए गए हैं। सक्षम बनाने वाले पैमानों में मानव संसाधन, निवेश, कारोबार का माहौल, सुरक्षा और कानूनी वातावरण को रखा गया है जबकि ज्ञान के उत्पादन और ज्ञान के प्रसार को प्रदर्शन का पैमाना माना गया है। इनोवेशन या नवाचार कई जगहों पर सरकार के प्रयासों से संभव हुआ तो कुछ जगहों पर यह समाज के द्वारा स्वतःस्फूर्त ढंग से भी हुआ। देश के कुछ खास इनोवेशन हब्स पर नजर डालें तो पुणे सभी तरह की शिक्षा के लिए, बेंगलुरु इंजीनियरिंग के लिए और कोटा इंजीनियरिंग-मेडिकल की कोचिंग के लिए जाना जाता है। इसके लिए किसी विशेष सरकारी प्रयास की जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन हैदराबाद को आईटी हब और नोएडा को मोबाइल हब बनाने में सरकारों ने काफी प्रयास किए। बिहार अन्य स्तरों पर नवाचार में भले ही पीछे हो लेकिन शिक्षा में उसकी पहल उल्लेखनीय है। बांका में शिक्षा विभाग ने पढ़ाई का एक मॉडल बनाया जिसे देश-दुनिया में पहचान मिली। लोक शिकायत अधिकार का कानून बनाने वाला पहला राज्य बिहार बना। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान समय से हो पा रहा है। उत्तराखंड ने कारोबार आसान करने के लिए कई कानूनों को सरल किया और इसके लिए सिंगल विंडो सिस्टम लागू किया जिससे उसे एक लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का निवेश मिला। समाज की सोच बदल रही है। परिवर्तन की इच्छाशक्ति पैदा हुई है। ऐसा माहौल बना है कि हम अगर कुछ नया करने की ठान लें तो आगे बढ़ सकते हैं। देखना होगा कि कुछ क्षेत्र इनोवेशन में पिछड़ क्यों रहे हैं। उनकी तरफ मदद का हाथ बढ़ाया जाए। इसी तरह व्यक्तिगत स्तर पर जारी नवाचार की कोशिशों को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

ऑफ दि ट्रैक

पनामा के गंदे इधर स्वच्छ

चंद्रभूषण

पनामा पेपर्स एक बार फिर चर्चा में हैं। इंटरनेशनल कंसॉर्शियम ऑफ इनवेस्टिगेटिव जर्नलिस्ट्स (आईसीआईजे) की कोशिशों से 15 अप्रैल 2016 को मोजैक फोंसेका फर्म के 1 करोड़ 15 लाख दस्तावेज सामने आए, जिसमें दुनिया भर के 214,488 असामियों की पहचान काले पैसों को सफेद करने के लिए गठित उनकी फर्जी शिपिंग कंपनियों के ब्यौरों के साथ मौजूद थी। 2008 की मंदी के बाद चली ऐसे पर्दाफाश की प्रक्रिया में कई बड़े खुलासे हुए थे, जिनमें पनामा पेपर्स का आकार सबसे बड़ा था। संसार की कई ताकतवर हस्तियों को इसमें फंसकर अपना पद-प्रतिष्ठा गंवानी पड़ी। इसकी एक बड़ी मिसाल पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ हैं, जो अभी परिवार समेत जेल में हैं। भारत का स्थान इस मामले में दुनिया से ऊपर है कि यहां ऐसे एक भी मामले में न तो किसी को कोई सजा मिली, न ही प्रतिष्ठा गंवानी पड़ी। पनामा पेपर्स में ही अमिताभ बच्चन, अजय देवगन, कुशल पाल सिंह और विनोद अडानी समेत 500 आलातरीन भारतीयों के नाम और सारे ब्यौरे मौजूद थे, लेकिन पिछले साढ़े तीन सालों में इन सबका कारोबार दिन दूना रात चौगुना बढ़ता नजर आया है। बहरहाल, पनामा पेपर्स पर अभी बातचीत इसलिए हो रही है कि इसके इर्द-गिर्द बनी फिल्म 'द लांड्रोमैट' तीखी मुकदमेबाजी से उबरकर अभी कल ही नेटफ्लिक्स पर रिलीज हुई है। मोजैक फोंसेका फर्म की ओर से इज्जत हतक की बुनियाद पर फिल्म रिलीज रोकने के लिए दायर मुकदमा अंततः इस दलील के सामने टिक नहीं पाया कि फर्म की इज्जत जितनी जानी थी, वह पहले ही जा चुकी है!

गैलरी

शिकारी का झपट्टा

खुशकिस्मत हैं वे लोग, जिनकी भूख मिटती है। वाइल्डलाइफ फटॉग्रफी अवॉर्ड आ चुका है। दुनिया के इस सबसे पुराने फटॉग्रफी अवॉर्ड से हमने चुने हैं कुछ ऐसे ही खुशकिस्मत जानवर, जो शिकार तक तो पहुंचे। यह अवॉर्ड्स ब्रिटेन का नेचरल हिस्ट्री म्यूजियम देता है। देखिए कुछ तस्वीरें :

वह पल : अपने बच्चों को खिलाने के लिए यह तिब्बती लोमड़ी जैसे ही हिमालयी मर्मोट की ओर मुड़ी, अजब सीन बना। तभी यांगकिंग बाओ ने फोटो ले ली।

मुंह में चल : बिल्ली सी आंख वाले सांप ने जब इस मेंढक में जहर छोड़ा तो मेंढक की आंखें नशीली होने लगीं। उसी वक्त जेमी कलेब्रास ने क्लिक कर दिया।

गया फिसल : साउथ अमेरिका में पाए जाने वाले इस लामा जैसे गुनाको पर प्यूमा झपटा, लेकिन गुनाको ज्यादा तेज था। इसी बीच इंगो आर्डंट ने तस्वीर ले ली।

तपती भट्ठी बनकर रह गया है सौंदर्य की देवी वीनस के नाम वाला ग्रह

शुक्र पर भी हो सकती थी जिंदगी

प्रदीप

सूर्य का दूसरा सबसे करीबी ग्रह शुक्र रात के आसमान में चांद के बाद दूसरी सबसे चमकदार और खूबसूरत चीज है। इसकी खूबसूरती के कारण ही इसे रोम की सौंदर्य और प्रेम की देवी 'वीनस' का नाम दिया गया। शुक्र को अक्सर पृथ्वी का जुड़वां भी कहा जाता है क्योंकि इन दोनों का आकार, द्रव्यमान और घनत्व लगभग एक जैसा है। दोनों एक सी गोलाकार कक्षाओं में सूर्य का चक्कर लगा रहे हैं। वैज्ञानिकों के मुताबिक दोनों का जन्म एक ही नीहारिका (नेब्युला) के संघनित होने से हुआ है। चूंकि पृथ्वी और शुक्र की जड़ें एक हैं, इसलिए बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में वैज्ञानिकों को ऐसा लगता था कि जरूर पृथ्वी की तरह जीवन योग्य परिस्थितियां भी शुक्र पर मौजूद होंगी।

मगर 1960 और 70 सत्तर के दशकों में इस ग्रह की जांच-पड़ताल के लिए शुरू हुए अंतरिक्ष अभियानों के जरिए वैज्ञानिकों ने जब इसका नजदीक से जायजा लिया तो पता चला कि भले ही पृथ्वी और शुक्र की जड़ें एक रहीं हों, पर मौजूदा रूप में ये दोनों एकदम अलग-अलग हैं। यूं कहें कि दोनों ग्रहों में समानताएं कम विषमताएं ज्यादा दिखाई देती हैं। बाद में पता चला कि शुक्र पर जीवन पनपने की संभावना बेहद कम है। इसका वायुमंडल कार्बन डाइऑक्साइड से घिरा है। यहां सल्फ्यूरिक एसिड की बारिश होती है और इसकी सतह का तापमान बहुत ही ज्यादा तकरीबन 480 डिग्री सेल्सियस है। इसकी सतह का दबाव पृथ्वी से 90 गुना ज्यादा है। हमारी पृथ्वी नम और जीवन से भरपूर है जबकि शुक्र सूखा और लैंडिंग की दृष्टि से दुर्गम है!

बहरहाल, जब 1978 में अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा का 'पायनियर वीनस मिशन' शुक्र की पड़ताल करने पहुंचा तो शुरू में उसने शुक्र की सतह पर महासागर मौजूद होने की संभावना भी जताई। वैज्ञानिकों ने इसकी पुष्टि के लिए कई और अंतरिक्ष अभियान शुक्र के अन्वेषण हेतु भेजे और इनके जरिए ग्रह की सतह और वातावरण से जुड़े डेटा को एकत्रित किया। इसके विश्लेषण से शुक्र ग्रह के बारे में यह धारणा बनी कि हो सकता है शुरू में यहां जीवन पनपने योग्य परिस्थितियां रही हों, मगर बाद में यह एक गर्म और नारकीय जगह में तब्दील हो गया।

हाल ही में स्विट्जरलैंड के शहर जिनेवा में खगोलविदों की एक अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी में नासा के माइकल वे और गोडार्ड इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस स्टडीज के एंथनी डेल जेनियो ने शुक्र पर अतीत में जीवन योग्य परिस्थितियों की मौजूदगी को लेकर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। इससे पता चलता है कि आज से तकरीबन दो से तीन अरब साल पहले शुक्र ग्रह पृथ्वी की तरह जल संपदा से संपन्न एक समशीतोष्ण (जहां ठंड और गर्मी बराबर पड़ती हो) ग्रह रहा होगा। शोधकर्ताओं ने पांच कंप्यूटर सिमुलेशंस की एक श्रृंखला प्रस्तुत की, जिसमें यह दर्शाया गया था कि जल व्याप्ति (वॉटर कवरेज) के विभिन्न स्तरों पर शुक्र का वातावरण कैसा रहा होगा, या समय के साथ शुक्र ग्रह का वातावरण कैसे परिवर्तित हुआ होगा।

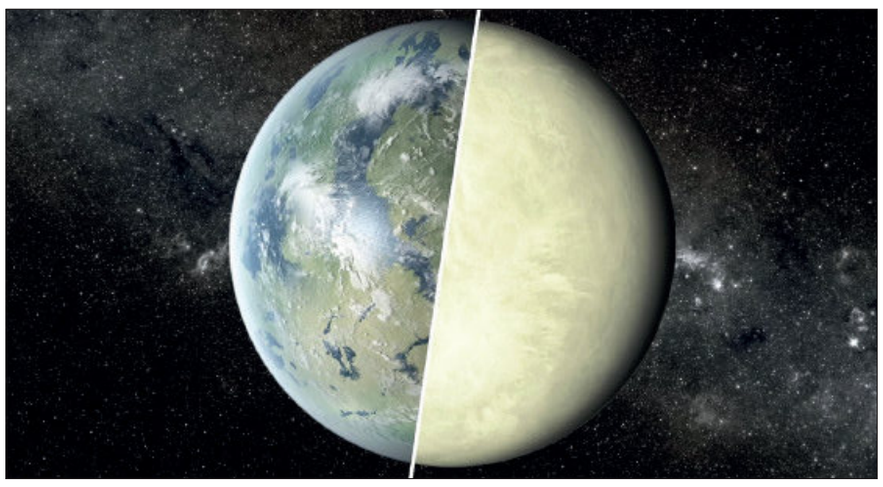

बाएं पृथ्वी दाएं शुक्र : जुड़वां ग्रहों का तुलनात्मक चित्रण

> शुक्र के वातावरण में 96 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड है। यहां लगातार सल्फ्यूरिक एसिड बरसता है और 322 किमी रफ्तार वाले तूफान चलते हैं

निष्कर्ष के रूप में सभी पांचों सिमुलेशंस एक ही बात की ओर इशारा करते हैं कि तकरीबन तीन अरब साल पहले शुक्र ग्रह न्यूनतम 20 डिग्री सेल्सियस और अधिकतम 50 डिग्री सेल्सियस तापमान के साथ एक स्थिर (स्टेबल) जलवायु बनाने में सक्षम रहा होगा। शोध यहां तक दावा करता है स्थिर जलवायु से शुक्र पर तरल रूप में पानी की मौजूदगी का पता चलता है और जीवन पनपने योग्य परिस्थितियों का भी। उस समय संभवतः वहां बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीवी भी मौजूद रहे हों। सवाल उठता है कि अगर शुक्र पर एक समय जीवन के अनुकूल परिस्थितियां मौजूद थीं तो फिर समय बीतने के साथ वह इतना गर्म कैसे होता गया? इस हालिया शोध के मुताबिक आज से करोड़ों साल पहले शुक्र ग्रह एक नाटकीय पुनरुत्थान (रीसरफेसिंग) की घटना से गुजरा जिसकी वजह से घटनाओं की एक श्रृंखला के तहत कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन जैसी ग्रीन हाउस गैसों का एक बड़ा विस्फोट हुआ।

विस्फोट की घटना को ग्रह की चट्टानों या ज्वालामुखियों के तल में जमी ग्रीन हाउस गैसों ने अंजाम दिया, जिससे शुक्र ग्रह की जलवायु पूरी तरह बदल गई। वैसे इस शोध से पहले भी वैज्ञानिक शुक्र के बादलों में जीवन की मौजूदगी का दावा कर चुके हैं। पृथ्वी पर बेहद खराब व विकट परिस्थितियों में भी जीवित रहने वाले जीवाणुओं की बड़ी संख्या मौजूद है। जैसे अमेरिका के येलोस्टोन पार्क के गर्म झरनों में, गहरी हाइड्रोथर्मल सुरंगों, प्रदूषित क्षेत्रों और अम्लीय झीलों में भी सूक्ष्मजीवियों की मौजूदगी दर्ज की गई है। इस संदर्भ में अमेरिका की कैलिफोर्निया स्टेट पॉलीटेक्नीक यूनिवर्सिटी के प्रफेसर राकेश मुगल का कहना है, 'पृथ्वी पर हमें पता है कि बेहद अम्लीय हालात में भी जीवन संभव है। कुछ जीवाणु कार्बन डाइऑक्साइड लेते हैं और सल्फ्यूरिक एसिड छोड़ते हैं।' उन्होंने कहा कि शुक्र पर मौजूद घने बादल भी ज्यादातर कार्बन डाइऑक्साइड और पानी की बूंदों के बने हैं, साथ ही उनमें सल्फ्यूरिक एसिड भी है। ऐसे में वहां जीवाणु मौजूद होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

शुक्र के वातावरण में 96 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड है और वहां लगातार सल्फ्यूरिक एसिड की बारिश होती है। इस ग्रह पर 322 किलोमीटर प्रति घंटे तक की रफ्तार से विनाशकारी तूफान चलते हैं और शीशे (लेड) को पिघलाकर बहने लायक बना देने वाली गर्मी पड़ती है। अब जरा अपनी पृथ्वी के बारे में सोचिए। यहां भी वातावरण बदल रहा है जिसके कई खतरनाक नतीजे सामने आने लगे हैं। इसकी वजह से वर्षा अनियमित हो गई है। कहीं बाढ़ आ रही है, तो कहीं सूखा पड़ रहा है। ऐसी विपदाओं के पीछे कोई प्राकृतिक कारण नहीं है। यह सब इंसानी करतूतों की वजह से हो रहा है। इसे रोकने के लिए फुर्ती से कदम उठाने की जरूरत है ताकि जीवन से लहलहाते हमारे खूबसूरत ग्रह का हश्र शुक्र जैसा न हो। जाहिर है, हमें शुक्र को एक सबक के रूप में लेना होगा।

कैमरा बोलता है

PTI

वही परी हूं : आसमां से आई हूं। मैं वही परी हूं किस्सों वाली। सपने पूरे करने वाली। अगर प्यार से आओगे तो मुझसे बहुत कुछ पाओगे। अगर मुझे सताओगे तो मैं फुर्र से उड़ जाऊंगी, फिर कभी न आऊंगी। मेरी बस एक बात सुन लो। ये दुनिया खुशियों से भर दो। किसी के हाथ रहें न खाली। हर ओर फैलाओ हरियाली। मैं वही परी हूं किस्सों वाली।

खास बात

क्या जरूरी है वन चाइल्ड पॉलिसी?

> देश की बढ़ती हुई जनसंख्या दूसरे स्टेज के कैंसर जैसी समस्या हो गई है। अगर इसे कड़े कानून से काबू नहीं किया गया तो यह चौथे स्टेज वाली लाइलाज स्थिति में चली जाएगी।
>
> – गिरिराज सिंह
>
> केंद्रीय मंत्री और बीजेपी नेता

वन चाइल्ड पॉलिसी के जरिए अगर चीन बेहिसाब बढ़ती आबादी की समस्या से छुटकारा पा सकता है तो हम क्यों नहीं पा सकते।

– सीमा

इस पॉलिसी के खतरों का अहसास होने पर चीन ने भी इससे तौबा कर ली है। बेहतर है कि हम जागरूकता के जरिए ही इस समस्या से निपटें।

– गौरव

प्रस्तुतिः रवि

अपना दुख हम कहें तो किससे

मुंबई की विरार-चर्चगेट लोकल में दोपहर में भी भीड़ असामान्य थी। नवरात्र के कारण उस दिन वे लोग ज्यादा थे जो विरार के जीवदानी मंदिर से लौट रहे थे। ऊंची पहाड़ी की सीढियों पर चढ़ने-उतरने की थकान सबके चेहरे पर मौजूद थी। वे एक-दूसरे के कंधे पर सिर रखकर सुस्ताने के मूड में थे लेकिन एक मोबाइल ने सबको परेशान कर रखा था। भीड़ में खड़ा एक दुबला-पतला आदमी किसी से मोबाइल पर तेज आवाज में बात कर रहा था। किसी ने व्यंग्य के लहजे में बताया कि 'यह ठिगना वसई स्टेशन पर चढ़ा है, तभी से फोन पर लगा हुआ है।' सचमुच, लोग उसकी बातें सुन-सुनकर पक रहे थे। कई बार लोगों ने आपत्ति भी की लेकिन उसपर कोई असर नहीं पड़ा। तब बाहर हो रही बारिश की फुहारों के समानांतर अंदर भी उस पर अपमानित करने वाले कॉमेंट्स की बौछार शुरू हो गई। इससे उसे फोन सुनने में दिक्कत होने लगी तो उसने फोन का स्पीकर चालू कर दिया। अब लोगों का गुस्सा और बढ़ गया। मैं भी तिलमिला उठा क्योंकि चाहकर भी पुस्तक के पन्ने नहीं खोल पा रहा था। फिर भी उसकी बातचीत जारी रही।

बोरीवली आते-आते इतना समझ में आ गया कि यह कहीं सब्जी का ठेला लगाता है। उस तरफ फोन पर जो आदमी है, यह उसी से उधार पर सब्जियां खरीदता है। उधार चुका नहीं पाया है, इसलिए वह ऊटपटांग ढंग से बातें कर रहा है। उधर वाला अचानक बहस करते-करते अपशब्दों पर उतर आया जबकि यह बहुत शालीनता के साथ मनुहार कर रहा था कि दो-तीन दिन में सारा कर्ज चुका देगा। विश्वास दिलाने के लिए मां-बाप की कसमें भी खाईं, लेकिन उधरवाला इसके मां-बाप के नाम भी गंदी-गंदी गालियां निकालने लगा। स्पीकर पर हमें भी उसकी आवाज साफ सुनाई दे रही थी। इसने टोका कि 'गाली हमको जितना चाहे दे दीजिए, हम आपके कर्जदार हैं लेकिन हमारे मां-बाप को बीच में काहे ला रहे हैं?' तब कुछ पल की चुप्पी आ गई। फिर इसी ने चुप्पी तोड़ते हुए भरोसा दिलाया कि 'हम बेईमानी करके भागेंगे नहीं। भागकर ही तो गांव से मुंबई आए हैं कमाने के लिए। गांव में कोई रोजगार-धंधा होता तो आपकी गालियां सुनने क्यों आते?' उसने फोन काट दिया। इसकी आंखें झुक गईं। ग्लानि से या शायद शर्म से।

खुद अपनी आंख से

आनंद भारती

डब्बे के अंदर माहौल बदल चुका था। जो लोग इस आदमी पर खीझ रहे थे, उनमें से एक ने कहा कि 'अपने व्यापारी का फोन लगाकर दो, पूछते हैं कि पैसा मांगने का यह कैसा तरीका है!' इस पर बाकियों ने भी हां-हां किया। लेकिन इसने हाथ जोड़कर फोन लगाने से मना कर दिया। कहा, 'वक्त-बेवक्त वही आदमी उधार में आलू-प्याज देता है जिससे परिवार चलता है। उसे कुछ भी उलटा-पुलटा कहेंगे तो नुकसान हमारा हो जाएगा। उसको अगर सच बताते कि बच्चा के बीमार होने के कारण समय पर कर्ज़ नहीं चुका पाए तो कहता बहाना बना रहे हैं।' वह एकबारगी चुप हो गया मगर अंधेरी स्टेशन पर उतरने से पहले कहा, 'बस एतने संतोष है कि अकेले लाचार हम ही नहीं हैं, बहुत लोग हैं। एक-दूसरे को देखकर दुख हल्का कर लेते हैं। भारी मन रखेंगे तो जीवन नरक हो जाएगा। इसलिए बिना लड़े-झगड़े समझदारी से जीने की कोशिश करते हैं। दुख बोलें भी तो किससे?' वह तो उतर गया, पर डब्बे के अंदर जैसे सबके मन को नम करता गया।

चलते-चलते...

कुछ लोग अपने कमरे में नीली रोशनी वाले नाइट बल्ब लगाते हैं, पर यह नुकसानदायक है। हाल की एक खोज से पता चला है कि यह रोशनी मस्तिष्क के साथ-साथ आंख के पर्दे को भी नुकसान पहुंचाती है और इससे हमारी उम्र घट सकती है। मध्य-पश्चिम अमेरिका स्थित ओरेगन स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ता अपने परीक्षण में इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि फोन, कंप्यूटर या अन्य घरेलू गैजेट्स से निकलने वाली नीली रोशनी आंखों तक सीधी न पहुंचे तब भी यह अपना असर दिखाती है।

कानून सख्ती से लागू कीजिए, छूट दिए बगैर

पर्यावरण का सवाल अधिकाधिक गंभीर होता जा रहा है। कुछ समय पहले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सिंगल यूज प्लास्टिक इस्तेमाल न करने के आह्वान के रूप में एक नई पहल की है। दिल्ली में जहरीली होती हवा के मद्देनजर एक बार फिर ऑड-ईवन स्कीम की तैयारी होने लगी है। मगर इस तरह के तमाम प्रयास तात्कालिक प्रकृति के ही साबित होते हैं। ऐसे ठोस कदम उठाए जाते नहीं दिख रहे जिनसे टिकाऊ बदलाव की उम्मीद की जा सके। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर ***प्राची यादव*** *ने नैशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के पूर्व अध्यक्ष जस्टिस (रिटायर्ड) स्वतंत्र कुमार से बातचीत की। प्रस्तुत हैं बातचीत के मुख्य अंशः*

सप्ताह का इंटरव्यू

जस्टिस (रिटायर्ड) स्वतंत्र कुमार

■ भारत में पर्यावरण को लेकर करीब 200 कानून बने हुए हैं, मगर प्रदूषण की समस्या गंभीर होती जा रही है। आखिर क्या वजह है?

ऐसा कानूनों की कमी की वजह से नहीं बल्कि लोगों की इसमें भागीदारी न होने की वजह से है। मैं पहले भी यह बात कहता रहा हूं कि किसी भी अभियान से अगर आप जनता को नहीं जोड़ोगे तो कभी वांछित परिणाम नहीं मिलेंगे। प्रदूषण की प्रमुख वजह कानूनों का प्रभावी तरीके से लागू न होना तो है ही, लेकिन आम जनता की उसमें अपनी भागीदारी न निभाना इसके लिए ज्यादा जिम्मेदार है। अकेले सरकार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

■ पर्यावरण से जुड़े मसलों पर चर्चा तो होती रहती है लेकिन ठोस काम होता नहीं दिखता है। क्या एनजीटी भी एक कागजी संस्था होकर रह गई है?

मैं ऐसा नहीं मानता। यहां समर्पित ब्यूरोक्रेट से लेकर ऐसे तमाम लोग हैं, जो सच में पर्यावरण को बचाने का जज्बा रखते हैं और अपने काम के प्रति समर्पित हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसे धैर्यपूर्वक लगातार जारी रखने की जरूरत है। रातों रात हालात में बदलाव संभव नहीं है। एनजीटी का अध्यक्ष रहते हुए मैंने अधिकारियों में ट्रिब्युनल के आदेशों के प्रति सम्मान और उन्हें लागू करने का जज्बा खुद देखा है।

■ प्लास्टिक बैन का पूर्व केंद्रीय मंत्री जयराम रमेश ने विरोध करते हुए कहा है कि इससे लोगों का रोजगार प्रभावित होगा। आपकी क्या राय है?

मेरी राय है कि प्लास्टिक पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाना जरूरी है। छूट के साथ इसे लागू करने से मकसद हासिल होने वाला नहीं। प्लास्टिक का विकल्प ढूंढ़ा जाना चाहिए। जहां तक रोजगार का सवाल है तो प्लास्टिक के अलावा भी तमाम विकल्प मौजूद हैं।

■ प्लास्टिक से पूरी तरह मुक्ति कैसे संभव है?

बिल्कुल संभव है। बस इच्छा शक्ति चाहिए। पहले जब प्लास्टिक नहीं था तो क्या घरों में सामान, दूध-दही नहीं आता था? स्टडीज के मुताबिक एक प्लास्टिक को गलने में 20 से 30 साल लगते हैं। गलने के बाद भी खाने पीने की चीजों के साथ यह हमारे शरीर में पहुंचकर उसे गंभीर नुकसान पहुंचा रहा है। इसमें किसी तरह की छूट देने का कोई मतलब नहीं है। छूट के बगैर, पूरी तरह लागू किया जाए तभी लाभ मिलेगा।

■ मौजूदा वैश्विक नेतृत्व पर्यावरण समस्या में रुचि नहीं ले रहा। डॉनल्ड ट्रंप भी...

नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तमाम देश घूम चुका हूं। मैंने देखा है कि कैसे आपात स्थिति में आपातकालीन योजनाएं अपने आप लागू हो रही हैं। मौजूदा भारतीय सरकार भी सजगता दिखा रही है। भावी पीढ़ी काफी जागरूक है, जिसके तमाम उदाहरण सामने हैं।

■ क्या पर्यावरण को बचाने के लिए डिवेलपमेंट का पूरा अजेंडा ही बदलने की जरूरत है?

मुझे इसकी जरूरत नहीं लगती। जरूरत है तो 'सस्टेनेबल डिवेलपमेंट' के सिद्धांतों का सख्ती से पालन करने की। बिल्डिंग बायलॉज का नियमित रूप से पालन होता रहे तो विकास जारी रखते हुए भी पर्यावरण के नुकसान से बचा जा सकता है। जरूरत है तो दृढ़ता से उन नियमों का पालन करने की, बाकी तमाम चीजें तो पहले से मौजूद हैं।

> सिर्फ स्टेट के भरोसे रहकर पर्यावरण नहीं बचाया जा सकता। आम आदमी की भागीदारी इसमें सबसे अहम है। हम ही कचरा फैलाना बंद कर दें, नदियों में गंदगी डालना बंद कर दें, ज्यादा से ज्यादा पेड़ पौधे लगाएं, उनकी देखभाल करें तभी असल मकसद हासिल होगा। अकेली सरकार के बूते यह संभव नहीं है

■ कुछ समय पहले एनजीटी ने कहा कि शहरों में गाड़ियों की संख्या नियंत्रित की जाए। यह कैसे संभव है खासकर तब जब कि शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रही है?

मौजूदा हालात को देखते हुए तो ऐसा करना बेहद जरूरी है। अभी मैंने एक गाड़ी देखी जो महज तीन पहियों पर खड़ी थी। ऐसी गाड़ियों को सड़क पर दौड़ाने से क्या लाभ? मैंने पहले भी कहा है कि पुरानी गाड़ियों की स्क्रैपिंग के लिए पॉलिसी बनाई जाए। स्ट्रिक्ट एमिशन रूल्स का पालन हो। ऑड ईवन लागू करते वक्त उसमें सब तरह की गाड़ियों को शामिल किया जाए। छूट के नाम पर दोपहिया वाहनों को राहत देने से कोई लाभ हासिल नहीं होगा क्योंकि देखा जाए तो पेट्रोल से चलने वाली दोपहिया गाड़ियों से ही सबसे ज्यादा प्रदूषण होता है।

■ इतना खर्च करने के बाद भी गंगा की सफाई नहीं हो सकी। असल प्रॉब्लम क्या है?

मेरे समय में तो हरिद्वार तक की गंगा काफी हद तक साफ हो चुकी थी। कानपुर के आगे का हिस्सा बचा था। मैं फिर वही बात दोहराऊंगा कि सिर्फ स्टेट (राज्य सरकार या केंद्र) के भरोसे रहकर पर्यावरण नहीं बचाया जा सकता। आम आदमी की भागीदारी इसमें सबसे अहम है। हम ही कचरा फैलाना बंद कर दें, नदियों में गंदगी डालना बंद कर दें, ज्यादा से ज्यादा पेड़ पौधे लगाएं, उनकी देखभाल करें तभी असल मकसद हासिल होगा। अकेली सरकार के बूते यह संभव नहीं है।

रीडर्स मेल

▸ अवसर न गंवाए कांग्रेस

एनबीटी के संपादकीय पृष्ठ पर 18 अक्टूबर को प्रकाशित लेख 'अंदरूनी सत्ता संघर्ष से जूझ रही कांग्रेस' पढ़ा। लोकसभा चुनाव में करारी शिकस्त के बाद उम्मीद थी कि कांग्रेस खुद में व्यापक बदलाव लाने के लिए कमर कसेगी। मगर लगता है, वह संभलने को तैयार नहीं है। शायद यही कारण है कि महाराष्ट्र, हरियाणा और अन्य राज्यों के उपचुनावों से पूर्व कांग्रेस की कोई विशेष तैयारी नजर नहीं आ रही। वह दिशाहीनता से ग्रस्त दिख रही है। महाराष्ट्र कांग्रेस का गढ़ रहा है लेकिन वहां उसके कई विधायक दूसरे दलों में शामिल हो चुके हैं। अब तो कांग्रेस के एक बड़े नेता भी उसे आत्ममंथन की सलाह दे चुके हैं। आने वाले चुनावों में कांग्रेस को पूरी ताकत लगानी होगी। पुराना विश्वास जीतना है तो कांग्रेस के लिए यह बेहतर मौका है। इसलिए इन चुनावों के परिणाम उसके लिए काफी महत्व रखते हैं। आज कांग्रेस जहां खड़ी है वहां से आगे का रास्ता उसे खुद तय करना है। बेहतर होगा कि कांग्रेस अपने समृद्ध अतीत का स्मरण कर अंदरूनी मसलों को सुलझा ले।

साजिद अली, ईमेल से

▸ ऑनलाइन शॉपिंग का चलन

इन दिनों ऑनलाइन शॉपिंग का चलन जोरों पर है। ऑफर या कैशबैक के लालच में हर कोई छोटी-बड़ी चीज ऑनलाइन मंगवा रहा है। लेकिन इससे फायदा किसको हो रहा है? क्या इस तरह की खरीदी से हम देश की अर्थव्यवस्था में उचित योगदान दे रहे हैं? ऑनलाइन मार्केट ने छोटे दुकानदारों की रोजी-रोटी खत्म कर दी है। कारण कि ऑनलाइन शॉपिंग में कुछ गिने-चुने हाथों में ही पूरी कमाई चली जाती है। दूसरी तरफ, ग्राहकों को दूसरी तरह की समस्याएं भी झेलनी होती हैं। मसलन, इसमें हाथों-हाथ आपको सामान नहीं मिलता है। कभी-कभी घटिया सामान भी आ जाता है तो रिफंड में देरी के चक्कर में समझौता कर आप उसे रख लेते हैं। ऑफर में कुछ शर्तें भी छिपी होती हैं, जिससे आपका नुकसान होता है। आवश्यक है कि हम अपने आसपास के दुकानदारों से संपर्क करें। इन दुकानदारों को भी चाहिए कि वे अपने व्यवहार में बदलाव लाएं। ग्राहकों की जरूरत के हिसाब से सामान उपलब्ध करवाएं और उनकी शिकायतें सुनें।

मोहित सोनी, ईमेल से

वर्ष 73, संख्या 250

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी वैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद तथा प्लॉट नंबर 407, तिवारीगंज, फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ-227105 और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाऊनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्सः 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कापी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
कार्यकारी संपादक (दिल्ली मार्केट) : ए.पी.एस. खाती (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)

हिन्दुस्तान

भारतीयों की वापसी

भारत किसी न किसी तरह से अवैध घुसपैठ की समस्या से जूझता रहा है। चाहे वे बांग्लादेश से आने वाले लोग हों या फिर रोहिंग्या शरणार्थी, पूरी मानवीयता बरतते हुए नीतिगत स्तर पर इस समस्या से निपटना हमेशा ही एक चुनौती भरा काम रहा है। ऐसी स्थिति में अगर दुनिया में कहीं भारतीयों को घुसपैठिया कहा जाए और फिर उन्हें एक जहाज में लादकर भारत रवाना कर दिया जाए, तो यह किसी भी स्थिति में स्वीकार करने लायक नहीं है। मैक्सिको से 311 भारतीयों को वापस भेजने की घटना ने उस सच को सामने ला दिया है, जिससे हम अक्सर आंखें चुराते रहे हैं। वैसे यह कोई नया तथ्य नहीं है कि अमेरिका जाकर बसने की लालसा में भारतीय बरसों से मैक्सिको जाते रहे हैं, जहां से वे अमेरिका की सीमा के अंदर घुसपैठ कर लेते हैं। ऐसे लोगों को भारत से ले जाने और अमेरिका की सीमा के अंदर धकेलने का काम करने के लिए दलालों और तस्करों का पूरा एक नेटवर्क है। भारतीयों की यह घुसपैठ लंबे समय से होती रही है और अमेरिकी आव्रजन और सीमा सुरक्षा विभाग का कहना है कि पिछले कुछ समय में यह संख्या तेजी से बढ़ी है और प्रतिवर्ष नौ हजार तक पहुंच गई है। नॉर्थ अमेरिकन पंजाबी एसोसिएशन ने पिछले साल यह पता लगाया था कि ऐसे 2,400 भारतीय विभिन्न अमेरिकी जेलों में कैद हैं। ऐसी घुसपैठ करने वाले ज्यादातर भारतीय पंजाब राज्य से ही हैं।

सबसे पहले उन कारोबारियों पर शिकंजा कसने की जरूरत है, जो लोगों को विदेश में अच्छी नौकरी का लालच दे अपना उल्लू सीधा करते हैं।

इस घुसपैठ से तंग आकर अमेरिका न सिर्फ कड़े कदम उठा रहा है, बल्कि इस प्रक्रिया में उसने कई ऐसे प्रावधान भी किए हैं, जिन्हें अमानवीय माना जाता है। ये कदम लंबे समय तक अमेरिका और मैक्सिको के बीच तनाव का कारण भी रहे हैं। अब जब दोनों देशों ने इस संबंध में एक समझौता किया है, तो मैक्सिको बार-बार यह सुबूत देने की कोशिश कर रहा है कि वह अपने तईं सख्ती बरत रहा है। यह सच है कि दुनिया भर के लोग अमेरिका में घुसपैठ के लिए मैक्सिको का रास्ता अपनाते रहे हैं, लेकिन यह भी सच है कि इस रास्ते से अमेरिका में प्रवेश करने वाले ज्यादातर लोग मैक्सिको के ही रहे हैं। लेकिन अब जब दोनों देशों में समझौता हुआ है, तो सक्रियता का सुबूत देने और प्रचार पाने के लिए सबसे पहला निशाना उन भारतीयों को बनाया गया है, जिन्होंने यह रास्ता अपनाया था। इससे मैक्सिको दुनिया को यह संदेश देने की कोशिश भी कर रहा है कि अमेरिका में प्रवेश का यह रास्ता अब बंद हो चुका है।

वहां का सच कुछ भी हो, भारत के लोग किसी देश में घुसपैठ करें, यह हमारे लिए काफी शर्मनाक है। ऐसी कोशिशें दुनिया की सबसे मजबूत अर्थव्यवस्था और महाशक्ति बनने के हमारे सपनों और लक्ष्यों से भी मेल नहीं खाती हैं। आमतौर पर इस तरह की घुसपैठ पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले नाकाम देशों से होती हैं। उन जगहों से, जहां लोगों के पास न तो ज्यादा अवसर होते हैं और न ही यह आश्वासन कि उन्हें निकट भविष्य में ठीक-ठाक अवसर मिल जाएगा। पिछले काफी समय से हम भारत में घुसपैठ रोकने के लिए नीति बनाने की मांग करते रहे हैं, अब समय आ गया है कि हमें दूसरे देशों में घुसपैठ करने वाले भारतीयों के बारे में भी स्पष्ट नीति बना लेनी चाहिए। जब तक यह नहीं होता, उस कारोबार पर तो गाज गिरनी ही चाहिए, जो लोगों को विदेशों में अच्छी नौकरी का लालच देकर मोटी कमाई करता है।

विदेशी अखबार से

ब्रेग्जिट के सवाल

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बोरिस जॉनसन के लिए 31 अक्तूबर एक डरावनी तारीख है, उसके बाद ब्रिटेन शायद यूरोपीय संघ का सदस्य नहीं रहेगा। हालांकि इसके पहले 29 मार्च और 12 अप्रैल की तारीख भी बहुत खास थी। कुछ भी स्पष्ट नहीं है। ब्रेग्जिट की डेडलाइन दुखद रूप से भ्रम और मुसीबत का सबब रही है। ब्रुसेल्स में जॉनसन ने अंतिम समय में एक सौदा किया है। समय कम है, तो प्रधानमंत्री सौदे की जल्दी में हैं। यह महत्वपूर्ण है कि जॉनसन आयरलैंड और ब्रेग्जिट के बारे में व्यावहारिक पेचीदगियों और ऐतिहासिक संवेदनाओं को समझने में सुस्त रहे हैं। उत्तरी आयरलैंड को लेकर मामला ज्यादा उलझ रहा है। यूरोपीय संघ के साथ ब्रिटेन के संबंधों के भविष्य को सही संदर्भों में रखकर देखना होगा। पूर्व प्रधानमंत्री थेरेसा मे इन समस्याओं को समझ गई थीं। वह यह भी समझ गई थीं कि भविष्य में यूरोपीय संघ से अच्छे संबंध रखने ही होंगे। वह यह भी समझ गई थीं कि यूरोप के बाकी देशों के साथ अबाध व्यावसायिक संबंध रखने पड़ेंगे। जॉनसन ने थेरेसा मे के रुख को बहुत हद तक खारिज कर दिया, क्योंकि वह ब्रेग्जिट मुद्दे पर ज्यादा उग्र दिखना चाहते हैं। अभी जो किया जा रहा है, उसके कारण यूरोपीय संघ के देशों के सामाजिक संरक्षण से अलग ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था चली जाएगी। अलग होकर ब्रिटेन कोशिश करेगा कि उसके यहां व्यापार की लागत कम रहे, इसके तहत श्रम संरक्षण में कमी की जाएगी, पर्यावरण मानकों को ढीला किया जाएगा और वेतन-भत्ते कम किए जाएंगे। इससे अंततः ब्रिटेन को नुकसान होगा। जॉनसन का दृष्टिकोण अबाध व्यापार को खारिज कर देता है। वह इसके लिए यूरोपीय बाजार तक अपनी पहुंच को छोड़ने के लिए भी तैयार हैं। वह जिस तरह की गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा चाहते हैं, उसमें वार्ता की भी गुंजाइश कम हो जाती है। वह यदि अपनी मर्जी का सौदा करते हैं, जो उसकी भारी कीमत देश को चुकानी पड़ सकती है। ब्रिटिश श्रमिकों और लोगों को इसके परिणाम भुगतने पड़ेंगे। जॉनसन एक प्रकार के अतिवाद की चपेट में हैं और वह ब्रिटेन को गलत दिशा में ले जाने की योजना के संकेत दे रहे हैं।

द गार्जियन, ब्रिटेन

79 साल पहले

हिन्दुस्तान Hindustan

बन ठन निकसीं

ये कुछ महीना ही ऐसा हुआ कि बुढ़िया भी देवरानियों की तरह ठसक में आ गई। रामलीला तो बहाना है- ठीक उसी तरह जैसे कि ''काम करती है नजर, नाम है पैमाने का।'' हर एक शरीर को अपनी बनावट का अभिमान होता ही है- फिर आधी दुनिया को तो होगा ही। इसलिए रामलीला के बहाने साल में एक बार स्वच्छन्द होकर निकलने के मौके को कौन छोड़ सकती थी-

छन न् न् न् जी पायल बाजे, गज गामिनी गर्वीली
अंगिया गोटेदार और चुनरी थी अजब रसीली;
माथे पर बिंदिया, काजल से आंखें बनी कंटीली
गोरी बन ठन करके निकसीं मांजे मियां पतीली।...
आंखों से आंखें लड़ती थीं दिल क्यों रहे अकेला
जीवन की दुनिया में आया यौवन मिस ले मेला।

यह तो बात हुई मेले की; सुनते हैं कि पुष्पवाटिका के दिन रामचन्द्रजी और सीताजी में झगड़ा होते-होते बचा। रामचन्द्रजी कह रहे थे कि पूड़ी खाऊंगा और सीताजी रूठ रही थीं कि उनके पेट में दर्द है, इसलिये वह खिचड़ी खाकर रह जायेंगी। वशिष्ठ जी के आने से पहिले एक ही डांट में त्रैलोक्यपति चुप हो गए।

13 अक्तूबर, 1940 को प्रकाशित तरंगी जी के आलेख का अंश

भाषा का संयम भूलता एक विश्व नेता

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने सिर्फ भाषा की मर्यादा को ही नहीं तोड़ा, इमरान खान जैसों को खराब भाषा इस्तेमाल करने की प्रेरणा भी दी है।

विवेक काटजू
पूर्व राजदूत

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने इस माह की नौ तारीख को तुर्की के राष्ट्रपति रैसिप तैईप एर्दोगन को एक खत भेजा, जिसकी भाषा मर्यादा की हर सीमा को तोड़ती दिखी। ट्रंप ने एर्दोगन को चेतावनी दी कि यदि उन्होंने कुर्दों के साथ एक अच्छा समझौता करने से इनकार किया, तो वह तुर्की की अर्थव्यवस्था को तबाह कर देंगे। इससे आगे बढ़ते हुए उन्होंने यह भी लिखा कि यदि वह (एर्दोगन) सही और मानवीय तरीका नहीं अपनाते हैं, तो इतिहास उन्हें शैतान के तौर पर देखेगा। पत्र के अंत में ट्रंप ने लिखा, कठोर मत बनो, बेवकूफ मत बनो।

अमेरिका के सदर ने इस तरह की भाषा का इस्तेमाल आखिर क्यों किया? दरअसल, इस खत को लिखने से कुछ दिन पूर्व ट्रंप और एर्दोगन की फोन पर बातचीत हुई थी। माना जाता है कि अमेरिकी राष्ट्रपति ने एर्दोगन की इस बात पर हामी भरी थी कि सीरिया के उत्तर-पूर्व में कुर्दों के खिलाफ तुर्की अपनी सेना उतारेगा, लेकिन इससे पहले ट्रंप उस इलाके में मौजूद सभी अमेरिकी सैनिकों को बाहर निकाल लेंगे। चूंकि सीरिया के गृह युद्ध में अमेरिका और कुर्द योद्धा आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट (आईएस) के खिलाफ एक साथ लड़े थे, जिसमें ग्यारह हजार से अधिक कुर्द लड़ाकों ने अपनी जान गंवाई, इसलिए ट्रंप ने जैसे ही कुर्दों का दामन छोड़ने का फैसला किया, अमेरिकी सेना और अमेरिका के राजनीतिक वर्ग में नाराजगी फैल गई। नतीजतन, ट्रंप ने एर्दोगन पर दबाव डाला कि वह बातचीत के जरिए कुर्दों से अपने विवाद सुलझाएं और आक्रमण से परहेज करें। मगर तुर्की ने सीरिया से अमेरिकी फौज के हटने के बाद कुर्द बहुल इलाकों पर हमला बोल दिया। यह चिट्ठी उसी हमले के बाद लिखी गई।

चित्रांकन : सुदर्शन मल्लिक

यह पहली बार नहीं है कि राष्ट्रपति ट्रंप ने अंतरराष्ट्रीय नेताओं की इस कदर बेइज्जती की है। अपमानजनक भाषा का प्रयोग और लांछन लगाना मानो उनकी आदत-सी बन गई है। 2018 में जी-7 शिखर सम्मेलन के फौरन बाद उन्होंने मेजबान देश कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो पर आरोप जड़ दिया था कि उन्होंने झूठी बयानबाजी की है और वह एक दुर्बल व बेईमान नेता हैं। स्वाभाविक था कि कनाडा ने उस बयान पर खुलकर अपनी नाराजगी जाहिर की। इससे पहले 2017 में उत्तर कोरिया के नेता किम जोंग-उन को भी ट्रंप 'लिटिल रॉकेटमैन' कहकर संबोधित कर चुके हैं। तब ट्रंप ने यह भी कहा था कि किम जोंग-उन ने यदि अमेरिका के खिलाफ कोई कदम उठाया, तो वह उनके देश का सफाया कर देंगे।

अंतरराष्ट्रीय कूटनीतिक मर्यादा का तकाजा यही है कि नेतागण एक-दूसरे से अदब से पेश आएं, फिर चाहे उनमें कितना भी मनमुटाव क्यों न हो। कुछ दशकों पहले तक कभी कोई नेता किसी दूसरे पर व्यक्तिगत हमले नहीं करता था। नीतियों की बेशक आलोचना की जाती थी और यह करते समय कठोर से कठोर शब्दों का इस्तेमाल भी होता था, लेकिन सब मर्यादा के दायरे में किया जाता। शब्द कभी शिष्टाचार की सीमा नहीं लांघते थे। शीत युद्ध के दौर में भी अमेरिका व उसके सहयोगी देश और सोवियत संघ व उसके मित्र देशों के बीच एक-दूसरे को क्षति पहुंचाने की तमाम कोशिशें हुईं, लेकिन कभी अंतरराष्ट्रीय शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं किया गया। लेकिन आज लगता है कि वह जो जमाना था, उसका मिजाज अब बदल रहा है, और इसके बदलने में निश्चय ही अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का बड़ा योगदान है।

पहले अमेरिकी राष्ट्रपति इस सिद्धांत पर चलते थे कि कठोर से कठोर कदम उठाने के बावजूद वह शालीन भाषा में ही दुनिया को संबोधित करेंगे। करीब 120 साल पहले अमेरिकी राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने अपने साथियों को यह सीख दी थी, 'स्पीक सॉफ्टली, बट कैरी अ बिग स्टिक', यानी सख्त रुख जरूर अपनाओ, लेकिन अपनी भाषा में शालीनता रखो। यह एक प्रकार से अमेरिका की राजनीतिक परंपरा का मूल सिद्धांत बन गया था। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में कई अन्य बड़े नेताओं ने भी इसी सिद्धांत पर चलना पसंद किया। लेकिन अब कई देशों की घरेलू राजनीति में विपक्ष की नीतियों की आलोचना के साथ-साथ व्यक्तिगत लांछन लगाने का दस्तूर बन गया है। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने तो अपने घरेलू राजनीतिक विरोधियों के लिए अब तक संभवतः हर अपमानजनक शब्द का इस्तेमाल कर लिया है। वह तो शारीरिक बनावट पर भी व्यंग्य कसने लगे हैं।

एक दौर था, जब हर देश की जनता अपने नेताओं से यही उम्मीद करती थी कि वे आदर्श व्यवहार का परिचय देंगे। मगर अब लगता है कि वह दौर बीत चुका है। अमेरिका में ट्रंप के समर्थक अपने नेता की भाषा को जायज बताते हैं और मानते हैं कि राजनीतिक विरोधियों की इसी तरह आलोचना की जानी चाहिए। आलम यह है कि राष्ट्रपति चुनाव को गुजरे ढाई साल हो गए, लेकिन अब भी ट्रंप अक्सर अपनी विरोधी हिलेरी क्लिंटन को ताने मारने से नहीं चूकते। ट्रंप की यही भाषा-शैली अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी दिखने लगी है।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान को भी अमेरिकी राष्ट्रपति का यह आचरण भाने लगा है। जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 हटने के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, भाजपा और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के खिलाफ उन्होंने जिस भाषा का इस्तेमाल किया, वह भारत-पाकिस्तान संबंधों के इतिहास में पहले कभी नहीं किया गया था। पिछले सात दशकों में भारत और पाकिस्तान के बीच कई युद्ध हुए हैं, पाकिस्तान का सत्ता-प्रतिष्ठान आतंकवाद के रूप में हमसे छद्म जंग लड़ता रहा है, भारत हर मोर्चे पर पाकिस्तान के मुकाबिल है, फिर भी दोनों तरफ से शिष्टाचार का पूरा ख्याल रखा जाता रहा। अधिक से अधिक भारतीय नेताओं ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर पाकिस्तान के नेताओं से मिलने से इनकार किया, जिसे भी कूटनीति के लिहाज से अशिष्ट आचरण नहीं कहा जा सकता। ऐसे में, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पाकिस्तान के हुक्मरां अपना संतुलन खो बैठे हैं। आपसी रिश्तों पर इसका दूरगामी प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

नश्तर

एक रुका हुआ फैसला

इन दिनों सरस्वती को याद मत करिए। विद्वान अगर गरीब न हो, तो शोभा नहीं देता।

त्योहार से ठीक पहले अगर चलता हुआ कोई फैसला रुक जाए, तो वकील खौरियाने लगते हैं। वैसे यह फैसला रुका नहीं है, फिलहाल सुस्ता रहा है। फिलहाल हम सबसे पहले दीपावली की बात करेंगे। वैसे भी उसे फैसले से पहले ही आना है। और इधर तो आलम यह है कि लक्ष्मीजी दिवाली के लिए तैयार हो रही हैं। सिंगार-पटार उनके आगे सजा है। सबका अनुभव है कि इसमें टाइम तो लगता ही है। और हां, इन दिनों सरस्वती को याद मत करिए। विद्वान अगर गरीब नहीं हो, तो शोभा नहीं देता। वैसे इन दिनों लक्ष्मीजी इस उधेड़बुन में भी हैं कि इस बार दिवाली में किस कुबेर का घर भरा जाए। सुदामा जुआ तक तो खेल नहीं सकता क्या, खाके दिवाली मनाएगा? अब तो खैर जुआ भी ऑनलाइन खेला जाता है। पड़ोसी पाकिस्तान में दिवाली नहीं मनाई जाती, मगर थानों में जुआ चलता रहता है। वहां की सरकार दांव पर तो लग ही चुकी है, बस चीरहरण होना बाकी है। वहां आज भी तरीका हमारे यहां वाला ही है कि अगर टिप दे दो, तो दारोगा जुर्माना नहीं लगाता।

कहते हैं कि एक जमाने में लोग पानी से दीये जलाते थे। पता नहीं, उस पानी की सिफत तेल जैसी थी या या उसमें किसी पानी से भी सस्ते तेल की मिलावट थी। मिठाइयों पर चांदी का वर्क इसलिए चिपकाया जाता है, ताकि मक्खियां न बैठें। इसीलिए लड्डू के थाल के नीचे लड्डू नहीं लिखा जाता, कहीं चींटों ने पढ़ लिया तो? इन दिनों पाक कला में जलेबी लोक लगती है और इमरती शास्त्र। ज्योति कलश भरे जा रहे हैं, ताकि दिवाली के दिन भरभराकर छलक सकें। पहले दीप से दीप जलाए जाते थे, अब तो मोमबत्तियों से जलाए जाते हैं।

खैर इस साल लंका विजय के बाद जब राम परिवार वापस आएगा, तब तक फैसला आ चुका होगा। तब देखना पानी से दीये जलेंगे। फिलहाल फैसला मुट्ठी में बंद है। भरी मुट्ठी में आस रहती है। कहा भी है, जब तक सांस तब तक आस। कुछ न कुछ तो होगा ही। कुछ के लिए दिवाली कुछ के लिए दिवाला।

उर्मिल कुमार थपलियाल

साइबर संसार

विज्ञान और महिलाएं

अगर आपने ब्रिटिश साइंस जर्नलिस्ट एंजेला सैनी की किताब *इनफीरियर* पढ़ी है, तो आपको 2019 में नोबेल पुरस्कारों की घोषणा पर कतई हैरानी नहीं होगी। इस बार विज्ञान के लिए नोबेल पाने वालों में सिर्फ पुरुष वैज्ञानिक हैं। दो महिलाओं को पिछले साल भौतिकी और रसायन में नोबेल मिल चुका है और यह उनके लिए काफी माना जा सकता है। यह बात और है कि 1901 से अब तक विज्ञान के लिए 600 से अधिक नोबेल दिए जा चुके हैं, और इनमें सिर्फ 20 महिला वैज्ञानिक शामिल हैं।

अब तक विज्ञान के लिए 600 से अधिक नोबेल दिए जा चुके हैं, जिनमें से सिर्फ 20 महिलाओं को मिले।

जिन एंजेला सैनी की किताब *इनफीरियर* का जिक्र मैंने ऊपर किया है, उसकी कैचलाइन है 'हाऊ साइंस गॉट विमेन रॉन्ग ऐंड द न्यू रिसर्च दैट्स रीराइटिंग द स्टोरी।' विज्ञान ने महिलाओं के साथ जो भेदभाव किया है, इस किताब में इसी का विश्लेषण किया गया था। अक्सर स्टेम यानी साइंस, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग और मैथ्स की शिक्षा में लड़कियों की संख्या कम होती है। फिर पूछा जाता है कि विज्ञान आखिर किसका विषय है? पर विज्ञान जो भेद करता है, उसका क्या? चूंकि विज्ञान के क्षेत्र में भी पुरुषों का प्रभुत्व है। इंफीरियर में वैज्ञानिकों के इंटरव्यू हैं और कहा गया है कि वैज्ञानिक शोध खुद औरतों को कमतर मानते हैं, जिसकी एक वजह यह है कि उन शोधों को करने वाले पुरुष ही हैं।

द क्विंट में माशा

मनसा वाचा कर्मणा

अपना ख्याल रखिए

तंज के साथ उनके साथी ने कहा था, 'अपना बहुत ख्याल रखते हो।' वह उखड़ गए थे। उन्हें लगा था कि वह उन्हें स्वार्थी कह रहे हैं। 'अपनी फिक्र करना या अपना ख्याल रखने का मतलब यह नहीं है कि आप स्वार्थी हैं।' यह मानना है डॉ कैथरीन किंग का। वह मशहूर साइकोलॉजिस्ट हैं। उनकी बेहद चर्चित किताब है, *लाइफस्पैन पर्सपैक्टिव्सः ऐक्सप्लोरिंग द साइकोलॉजी ऑफ एजिंग, रिलेशनशिप्स ऐंड माइंड बॉडी वेलनेस।*

हमें अपना ख्याल रखना चाहिए। हमसे गाहे-बगाहे कहा ही जाता है। हम अपना ख्याल रखने लगते हैं, तो लोग कुछ और ही समझ लेते हैं। उसकी वजह से हम अपना ख्याल रखना भी बंद कर देते हैं। अपना ख्याल रखने से कोई स्वार्थी नहीं हो जाता। बस अपना ही ख्याल रखने से हो सकता है। हमें अपना ख्याल रखना ही चाहिए। उसका यह मतलब कैसे हो गया कि हम औरों को ख्याल नहीं रख सकते। हम जब अपने ख्याल में दूसरों का नुकसान करते हैं, तब दिक्कत होती है।

अक्सर माना जाता है कि अपना ख्याल रखने का मतलब सेहत से होता है। लेकिन हमारी जिंदगी महज सेहत ही नहीं होती। न जाने और कितनी चीजें जुड़ी होती हैं हमसे। तन की बतियाते हुए हम मन की बात भी कर लेते हैं। बोलने में अक्सर तन मन एक साथ आता है। लेकिन अपना ख्याल करते हुए हम मन को हाशिए पर ले जाते हैं। हमें अपने तन का ख्याल रखना होता है। हमें अपने मन की भी फिक्र करनी होती है। हमें अपनी मंजिल का ख्याल करना होता है। हमें अपने रास्ते को भी देखना होता है। भटकाव पर भी नजर रखनी होती है।

राजीव कटारा

नजरिया

साहित्य के नोबेल का आदर्श ऐसा तो नहीं हो सकता

पीटर हंडके को साहित्य का नोबेल दिया जाना उस भावना के विपरीत है, जो अल्फ्रेड नोबेल ने व्यक्त की थी।

सलिल त्रिपाठी
स्तंभकार

बोस्निया के बदकिस्मत लोगों की यह कथा अब पुरानी पड़ चुकी है। 1995 में यहां रत्को म्लादिक की कमांड वाली बोस्नियन सर्ब सेना ने आठ हजार पुरुषों और लड़कों का कत्लेआम कर दिया था। ऐसी कहानियां बोस्निया, सर्बिया, हर्जेगोविना, हर जगह से आई थीं। जब हम इसकी रिपोर्टिंग के सिलसिले में देश के दूसरे कोने पर स्त्रेबेनिका गए, तो पता चला कि लोगों को मारकर उनकी लाशें प्रिजोर की खदान में दफ्न कर दी गई थीं। अंतरराष्ट्रीय संगठनों को बड़ी मुश्किल से इसके सुबूत जमा करने पड़े। डीएनए की जांच हुई, ताकि उनके शरीर उनके परिजनों को सौंपे जा सकें। हमारी तरह ही कई पत्रकारों, इतिहासकारों, राजनयिकों, वकीलों, लेखकों और मानव अधिकार विशेषज्ञों ने लोगों से बात की और उनके अनुभव जमा किए। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे, जो ऐसे किसी नरसंहार से ही इनकार कर रहे थे, या यह कह रहे थे कि नरसंहार इतना बड़ा नहीं था। कुछ का तर्क था कि दोनों ही पक्ष समान रूप से बर्बर थे।

युद्ध के अपराध से इनकार करना पीड़ितों के घावों पर नमक छिड़कने जैसा होता है। बहुत बड़ी त्रासदी तब होती है, जब मानव हालात के प्रति संवेदनशील होने की उम्मीद जिससे की जाती है, वही झूठ पर विश्वास करने लगे। इससे भी बुरा तब होता है, जब दुनिया का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार ऐसे लेखक को दिया जाए, और वह भी सिर्फ कला के नाम पर। यह कहा जाए कि कला ही महत्वपूर्ण है, लेखक की अपनी राजनीति और सोच नहीं। और ऐसी ही सोच ने इस बार का नोबेल साहित्य पुरस्कार पीटर हंडके को दिया है। क्या हंडके का लेखन मार्गरेट एटवुड, मिलान कुंदेरा, सलमान रश्दी, डेविड ग्रॉसमैन से बेहतर है? इनमें से किसी को भी नोबेल पुरस्कार नहीं मिला। जाहिर है, यह सबकी निजी रुचि का मामला है। अल्फ्रेड नोबेल ने अपनी वसीयत में लिखा था कि यह पुरस्कार ऐसे शख्स को दिया जाना चाहिए, जिसने 'साहित्य की उत्तम दर्जे की ऐसी रचना दी हो, जो हमें आदर्श दिशा मे ले जाती हो'। क्या हंडके को दिया गया नोबेल पुरस्कार इस पैमाने पर खरा उतरता है?

हंडके ने जो लेखन किया है, उसमें सबसे प्रसिद्ध है- *द गोलीज एंग्जाइटी एट द पेनाल्टी किक*। इसके अलावा जर्मन फिल्म निर्माता विम वेंडर के साथ मिलकर उन्होंने एक बहुत उत्तम रचना *विंग्स ऑफ डिजायर* भी दी है। उन्हें पहले भी कई पुरस्कार मिल चुके हैं, जिनमें नार्वे का प्रसिद्ध इबसेन पुरस्कार भी है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने *ए जर्नी टु द रिवर्सः जस्टिस फॉर सर्बिया* भी लिखी है। सर्बिया के नरसंहार के एक साल बाद वह कुछ दिनों के लिए बाल्कन गए थे और उसी पर आधारित उनकी यह पुस्तक जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई थी। इसमें उन्होंने सर्बिया की जातीय शुद्धता की बात की है और कहा है कि सच्चा यूरोप अगर कहीं है, तो सर्बिया में ही है। उन्होंने नरसंहार से भी इनकार किया और कहा कि सर्ब लोग पीड़ित थे, हमलावर नहीं।

इस तरह की भ्रांतियां आपको षड्यंत्रकारियों के साथ खड़ा कर देती हैं और पीड़ितों को भ्रमित कर देती हैं। इससे भी बुरा तब होता है, जब कोई अपनी भ्रांति पर अड़ जाए। हंडके न सिर्फ अड़ गए, बल्कि स्लोबोदान मिलोसेविक पर तारीफों के फूल भी बरसाते रहे। 1999 के एक लेख में रश्दी ने उनके बारे में यहां तक कहा कि उन्हें वर्ष के सर्वश्रेष्ठ अंतरराष्ट्रीय मूर्ख का सम्मान दिया जाना चाहिए। मिलोसेविक ने हंडके को इसका पुरस्कार भी दिया। उन्हें 'ऑर्डर ऑफ सर्बियन नाइट' अवॉर्ड से नवाजा गया। यहां तक कि जब मिलोसेविक का तख्ता पलट हो गया और उन्हें हेग ट्रिब्यूनल के सामने पेश किया गया, तब भी हंडके उनका समर्थन करते रहे। मिलोसेविक ने हंडके से यह भी कहा कि वह ट्रिब्यूनल में उनके पक्ष में गवाही दें, लेकिन हंडके ने ऐसा करने से मना कर दिया। 2006 में जब मिलोसेविक का निधन हुआ, तो हंडके ने उनके सम्मान में भाषण भी दिया। हंडके न कभी अपनी बात से पीछे हटे और न ही उन्होंने बालकन युद्ध के असल पीड़ितों से कभी माफी मांगी। बेशक, हंडके जिसे सच मानते हैं, उस पर विश्वास करने का उन्हें पूरा हक है और इसके लिए उन पर पाबंदी नहीं लगनी चाहिए। आपत्ति सिर्फ इस पर है कि स्वीडिश अकादमी उस आदर्श दिशा की भावना को नहीं समझ सकी, जिसकी बात अल्फ्रेड नोबेल ने की थी।

हंडके ने न सिर्फ सर्बिया के नरसंहार को नजरंदाज किया, बल्कि गुनहगार पर तारीफों के फूल भी बरसाए।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मेल बॉक्स

ग्रीन दीपावली की ओर

पटाखे वैसे तो दीपावली की पहचान हैं, लेकिन इनसे दूरी बनाकर चलना वक्त की जरूरत है। तीव्रता और तेज प्रकाश पैदा करने वाले पटाखे कई तरह से हानिकारक हैं। वे आपकी सुनने और देखने की क्षमता पर बुरा असर डालते हैं। इनसे निकलने वाला धुआं कार्बन डाई-ऑक्साइड समेत कई प्रदूषक पैदा करता है, जो पर्यावरण के साथ-साथ मानव सेहत के लिए भी नुकसानदेह हैं। यही वजह है कि तेज आवाज वाले पटाखों को प्रतिबंधित किया गया है। हरित दीपावली की वकालत भी की जाने लगी है। इस तरह की पहल गलत नहीं जान पड़ती। यदि दांव पर मानव जीवन हो, तो पटाखों से परहेज करना ही उचित होगा। ग्रीन दीपावली मनाकर हम अपनी सेहत के साथ-साथ पर्यावरण को भी संवारने का काम कर सकेंगे। क्या इस बार हम ऐसा करेंगे?

अमन सिंह, बरेली, उत्तर प्रदेश
writeramansingh@gmail.com

समझौते का मार्ग

राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद पर उच्चतम न्यायालय में सुनवाई भले ही पूरी हो गई हो, लेकिन समझौते का मार्ग अब भी खुला है। इतिहास गवाह है कि मध्यस्थता का रास्ता हमेशा शांति का मार्ग है। मंदिर-मस्जिद की विवादित जमीन पर समय रहते अदालत अपना फैसला सुना ही देगी, लेकिन उससे पहले यदि हमारे पास समझौते का विकल्प मौजूद है, तो उसका इस्तेमाल जरूर किया जाना चाहिए। महज बातें करने से गंगा-जमुनी तहजीब कायम नहीं होगी। इसके लिए त्याग करना होता है। आपसी समझदारी, सहयोग और समझौते से वैमनस्य का अंत तो होगा ही, देश में धर्मनिरपेक्षता की जड़ें भी मजबूत होंगी।

हितेंद्र डेढ़ा, चिल्ला गांव
hitender.dedha@gmail.com

फरिश्ते दिल्ली के

सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय के 2015 के आंकड़ों के अनुसार, हमारे देश में प्रतिदिन 400 लोगों की मौत सड़क दुर्घटनाओं में होती है। यह आंकड़ा एक कड़वा सच है। दिल्ली जैसे महानगरों में सड़कों पर होने वाली मौतों की बड़ी वजह आम जनता का उदासीन रवैया भी है। यदि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को समय रहते नजदीकी अस्पताल पहुंचा दिया जाए, तो उसकी जान बच सकती है। भारतीय संविधान में निहित 'बंधुत्व' का मूल्य भी यही है। परंतु देखने में यह आता है कि अव्वल तो लोग अस्पताल नहीं ले जाते, और यदि ले जाते हैं, तो निजी अस्पताल ऐसे मामलों को लेने से साफ इनकार कर देते हैं। इसलिए निजी अस्पतालों पर नकेल कसना और सड़क हादसों के खर्चे की जिम्मेदारी लेना यकीनन दिल्ली सरकार की एक अच्छी पहल है। दूसरे राज्यों को भी इसे अपने यहां लागू करना चाहिए।

तरुण भसीन, दिल्ली
tarunbhasin1973@gmail.com

नीति में खोट

उज्ज्वल डिस्कॉम एश्योरेंस योजना यानी 'उदय' की शुरुआत 2015 में केंद्र सरकार द्वारा की गई थी, ताकि बिजली वितरण करने वाली कंपनियों की माली हालत सुधर सके। जब मनमुताबिक नतीजे नहीं आए, तो उदय का दूसरा चरण शुरू करने की बात कही जा रही है। क्या इससे इन कंपनियों को घाटे से उबारा जा सकता है? ऊर्जा क्षेत्र में मूलतः तीन चरण होता है- उत्पादन, हस्तांतरण और वितरण। पहले दो चरणों में कोई दिक्कत नहीं है, पेच सिर्फ वितरण में है। इसी चरण में बिजली एक सियासी मसला बन जाती है। सभी को मुफ्त में बिजली चाहिए। किसानों-मजदूरों के वोट न मिलने के भय से पार्टियां ऐसा करने को बाध्य हो जाती हैं। नतीजतन, लागत के आधे से भी कम मूल्य पर बिजली दी जाने लगती है। जब हम पेट्रोल और डीजल को लागत मूल्य पर बेच सकते हैं, तो बिजली को क्यों नहीं? घाटे का एक बड़ा कारण बिजली चोरी भी है। उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में तो यह चोरी 40 फीसदी तक है। ऐसे में, अगर उपभोक्ताओं के लिए बिजली की दर दोगुनी भी कर दी जाए, तो नुकसान को पाटना मुश्किल होगा।

जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

साधारण डाक से पत्र भेजने के अलावा आप ईमेल से भी अपनी राय भेज सकते हैं। ईमेल से 'आपकी राय' भेजने के लिए हमारा पता है- **mailbox@livehindustan.com**

जनसत्ता

19 अक्तूबर, 2019

अमीरी का आंकड़ा

भारत में बड़े अमीरों की संपत्ति बढ़ने की रफ्तार में कमी आई है, यह सुन कर गरीबों को थोड़ी देर के लिए सुकून मिल सकता है। लेकिन पिछले कुछ सालों में भारत में अमीर जिस तेजी से और अमीर हुए हैं और गरीबों की गरीबी और ज्यादा बढ़ी है, यह हैरान करने वाला तथ्य है। जाहिर है, असमानता कम होने के बजाय और बढ़ती जा रही है। अमीर-गरीब के बीच खाई और चौड़ी हुई है, यह एक प्रामाणिक सच्चाई है। ऐसे में समतामूलक समाज की कल्पना तो नहीं की जा सकती! देश में गरीब और मध्यम वर्ग का तबका सबसे बड़ा है और यही असल गरीब भी है। अरबपतियों की तादाद तो सिर्फ कुछ लाख ही है। इसलिए ऐसे में जब अरबपतियों की संख्या बढ़ने-घटने या उनकी संपत्ति में कमी-बेशी होने की खबरें आती हैं, तभी गरीब को इनकी भनक लगती है। हाल में धन प्रबंधन का आकलन करने वाली एक संस्था कार्वी वेल्थ मैनेजमेंट ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि पिछले साल अमीरों की संपत्ति वृद्धि की दर घट कर 9.62 फीसद रह गई है जो पूर्ववर्ती वर्ष (2017) में साढ़े तेरह फीसद थी। अमीरों की संख्या भी घटी है। रिपोर्ट बताती है कि भारत में अरबपतियों की संख्या दो लाख तिरसठ हजार से घट कर दो लाख छप्पन हजार रह गई, यानी सात हजार लोग अरबपति से करोड़पति की श्रेणी में आ गए। इसलिए एक सवाल यह भी उठता ही है कि अमीर के साथ ऐसा क्या हो रहा है कि उसकी संपत्ति में गिरावट आ रही है और अरबपति की श्रेणी से बाहर हो रहा है।

सवाल है कि अमीर या बड़ा अमीर है कौन। मोटे तौर पर अमीर वही है जो हर तरह के आर्थिक संसाधनों से संपन्न है, जिसके पास खासी संपत्ति हो, उद्योग-धंधों, निवेश, विदेश व्यापार जैसी गतिविधियों में उसकी भागीदारी हो। करोड़पति भी अमीर ही हैं, लेकिन इनकी संख्या कुछ करोड़ों में ही होगी। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग ही हैं जिन्हें रोजगार की समस्या से सबसे ज्यादा रूबरू होना पड़ रहा है। लोगों के पास काम के अवसर सीमित होते जा रहे हैं और इसलिए इनमें भी एक बड़ा तबका ऐसा बनता जा रहा है जो आज पंद्रह-बीस हजार की नौकरी करने के लिए मजबूर है। जाहिर है, ऐसे में निम्न आय वर्ग का तबका और बड़ा होता जाएगा। पर अमीरों पर कोई असर इसलिए नहीं पड़ने वाला क्योंकि यह वर्ग करोड़पति और अरबपति के बीच ही बना रहेगा।

अगर बड़े अमीरों की तादाद घट रही है तो यह इस बात का संकेत है कि कहीं न कहीं सरकार की आर्थिक नीतियां ऐसी हैं जिनसे अमीरों पर असर पड़ रहा है। पर आमजन तो यही सोचता है कि अगर अमीर के पास से पैसा निकल रहा है तो वह गरीब को क्यों नहीं मिल रहा! संपत्ति के लिहाज से देखें तो भारत के अमीरों के पास मौजूद कुल संपत्तियों में दो सौ बासठ लाख करोड़ रुपए की वित्तीय संपत्ति है। इनकी चल-अचल संपत्ति का अनुपात साठ-चालीस का है। इस तरह की खबरें हैरान इसलिए करती हैं कि ये अमीरी के आंकड़े और इनकी गाथा उस देश में है जो भुखमरी से निपट पाने के मामले में वैश्विक पैमाने पर पाकिस्तान और बांग्लादेश जैसे देशों से भी नीचे है। जहां आज भी करोड़ों बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, आबादी का बड़ा हिस्सा बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित है, बच्चों को शिक्षा के अवसर वैसे नहीं हैं जो मिलने चाहिए। ग्रामीण भारत की हालत तो आज भी चिंताजनक है। ऐसे में भारत पांच लाख करोड़ की अर्थव्यवस्था बनने का सपना देख रहा है। अमीर अपनी घटती दौलत से परेशान हैं। ऐसे में गरीब की चिंता करने वाला कौन है?

संवेदनहीनता की हद

मध्यप्रदेश में ग्वालियर जिले के समूदन गांव में आवारा घूम रही आठ गायों सहित सत्रह गोवंश की मौत जिस तरह हुई, हो सकता है उसे कुछ पशुओं की मौत मान कर लोग बाकी का काम बिना किसी परेशानी के करने लगें। लेकिन इंसानी समाज अपने विकास के साथ आज जिस मुकाम तक पहुंच सका है, वहां यह उम्मीद होगी कि लोगों के भीतर किसी भी जीव के प्रति संवेदना के तत्त्व जिंदा रहें। सवाल है कि जो पशु न केवल आम जीवन, बल्कि उपयोगिता के लिहाज से भी मानव समाज के साथी रहे हैं, लोग उनकी देखरेख के लिए तन-मन-धन से समर्पित रहे हैं, आज उनके आवारा घूमने की नौबत कैसे आ गई है! गौरतलब है कि ये पशु आमतौर पर निजी स्वामित्व से लेकर गोशालाओं के संरक्षण में पलते रहे हैं और उनकी देखभाल का एक समूचा सामाजिक तंत्र बना रहा है। लेकिन समूदन गांव के आसपास ये पशु आवारा घूम रहे थे और कुछ लोगों ने स्थानीय सरकारी स्कूल के एक कमरे में उन्हें ठूंस कर बंद कर दिया। उस कमरे में वे पशु पिछले सात दिन से बिना चारा-पानी के बंद थे और आखिर उनमें से सत्रह की जान चली गई।

इस मामले में पुलिस ने अज्ञात लोगों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर लिया है और अब दोषियों की खोज की जाएगी। लेकिन हैरानी की बात यह है कि जहां गाय एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में बेहद संवेदनशील पशु के तौर पर देखी जाने लगी है, वहीं इतनी सारी गायें बिना किसी संरक्षण के आवारा घूमने की हालत में हैं और कुछ लोगों की ऐसी क्रूरता की शिकार बन रही हैं। हाल में ऐसी खबरें जरूर आई हैं कि आवारा पशुओं की वजह से कई इलाकों में खेतों में लगी फसलों को काफी नुकसान पहुंच रहा है। गाय या बैल जैसे पशु अब तक सामाजिक जिम्मेदारी रहे हैं, उनके पालन-पोषण से लेकर अंतिम समय तक के लिए एक समूचा चक्र बना हुआ है और पशुपालन के काम में लगे लोग अपने पालतू पशुओं को लेकर कई बार बेहद भावुक भी रहे हैं। लेकिन आज यह देखना विचित्र है कि कुछ लोग पशुओं के खिलाफ इस हद तक बेरहम हो जा रहे हैं।

हमारे समाज में सभी जीवों के प्रति संवेदनशील होने की सीख दी जाती रही है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (ए) के तहत भी यह कहा गया है कि हर जीवित प्राणी के प्रति सहानुभूति रखना भारत के सभी नागरिकों का मूल कर्तव्य है। पशुओं के प्रति क्रूरता के खिलाफ कई कानून भी मौजूद हैं। लेकिन इन पहलुओं की अनदेखी करके आज पशुओं के प्रति ऐसे बर्ताव करते हुए लोग नहीं हिचक रहे हैं। अक्सर सड़कों पर गुजर रहे वाहनों में गाय-भैंस या दूसरे पशुओं को बेहद तकलीफदेह हालात में ले जाते देखा जा सकता है। कई बार आवारा कुत्तों की बढ़ती समस्या की शिकायतों के बाद संबंधित प्रशासनिक महकमे के लोग जिस तरह उन्हें वाहनों में भर कर ले जाते हैं, वह मनुष्य की संवेदना पर एक सवालिया निशान की तरह होता है। जबकि पशुओं को असुविधा में रख कर, दर्द पहुंचा कर या परेशान करते हुए किसी भी गाड़ी में एक से दूसरी जगह ले जाना दंडनीय अपराध भी है। सभ्य समाजों का हिस्सा होने के नाते मनुष्य से इस तरह की संवेदनहीनता की अपेक्षा कतई नहीं होती है। इंसान और पशु की जगह अलग-अलग हो सकती है। लेकिन इंसान से यह उम्मीद जरूर होगी कि कम से कम वह अपनी इंसानियत ही बचा ले!

कल्पमेधा

अमीर और गरीब के अंतर कितना मामूली है!
एक ही दिन की भूख और प्यास दोनों
को बराबर बना देती हैं।
-खलील जिब्रान

मध्य-पूर्व में कुर्दिस्तान की आहट

ब्रह्मदीप अलूने

तुर्की में इस समय बीस फीसद कुर्द हैं। पीढ़ियों से तुर्की में कुर्दों के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार होता रहा है। तुर्की में कुर्दिश नाम और उनके रिवाजों को प्रतिबंधित कर दिया गया है। इसके साथ ही कुर्दिश भाषा भी प्रतिबंधित है। यहां तक कि कुर्दिश पहचान को भी खत्म कर दिया गया है। साल 2017 में इराक में अलग कुर्दिस्तान के लिए जनमत संग्रह हुआ तो भारी तादाद में कुर्दों ने इसके पक्ष में मत डाले। इसके बाद तुर्की कुर्दों को लेकर गहरे दबाव में आ गया।

बगावत और हिंसक संघर्षों से लंबे समय से जूझते देश सीरिया की आंतरिक राजनीति ने एक बार फिर करवट ली है। इस्लामिक स्टेट (आइएस) के खूनी संघर्ष से निपटने में सीरिया के मददगार रहे तुर्की के तेवर अचानक बदल गए हैं। दरअसल, कुछ दिनों पहले अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपनी सेना को सीरिया की जंग से अलग करने का जैसे ही ऐलान किया, वैसे ही तुर्की ने कुर्दों को निशाना बना कर पश्चिम एशिया में नया संकट खड़ा कर दिया है। तुर्की कुर्दों के संगठन को आतंकवादी समूह मानता है और उसे अपनी संप्रभुता के लिए खतरा बताता रहा है। वहीं, अमेरिका कुर्दों को लेकर उदार रवैया दिखाता रहा है। पश्चिम एशिया की मुसलिम लड़ाकू जनजाति कुर्द अपनी बहादुरी और दिलेरी के लिए दुनिया भर में विख्यात है। इसका प्रभाव सीरिया के उत्तरी इलाकों के साथ ही तुर्की, इराक और ईरान तक है।

सीरिया के उत्तर में कुर्द ठिकानों पर तुर्की की सेना लगातार गोलाबारी कर रही है और इससे इस इलाके में रहने वाले हजारों परिवार युद्ध की मार झेल रहे हैं। दुनिया के सबसे खतरनाक इलाकों में शुमार इस क्षेत्र में आइएस के कई लड़ाके कुर्दों के कब्जे में हैं और तुर्की के हमलों के बाद से वे जेलों से भाग रहे हैं। आइएस के इन खूंखार लड़ाकों को कुर्दों ने अमेरिकी सेना की मदद से बड़ी मुश्किल से पकड़ा था। ऐसे में इनका भाग निकलना पश्चिम एशिया सहित पूरी दुनिया को खतरे में डाल सकता है। यदि ये लड़ाके फिर से संगठित हो गए तो आइएस मध्य-पूर्व में फिर से मजबूत हो जाएगा और इसके दूरगामी परिणाम बेहद खतरनाक होंगे। दूसरी ओर, तुर्की के राष्ट्रपति कुर्दों पर हमले के अमेरिका और यूरोप के विरोध को दरकिनार कर धमका रहे हैं कि यदि उन्हें हमलों से रोका गया तो वे पश्चिमी एशिया के छत्तीस लाख युद्ध प्रभावित शरणार्थियों को यूरोप में धकेल देंगे।

तुर्की का कहना है कि सीरिया से गृह युद्ध के चलते जो शरणार्थी तुर्की में रह रहे हैं, उन्हें वे सुरक्षित क्षेत्र में बसाना चाहते हैं। वह वहां बीस लाख सीरियाई शरणार्थियों के लिए एक शिविर बनाएगा। फिलहाल यह इलाका कुर्दों के पास है। कुर्द लड़ाकों की मदद कर रही सीरिया सरकार की सेना रणनीतिक रूप से अहम मानबिज शहर में दाखिल हो गई है। तुर्की इस इलाके को खाली करवा कर सुरक्षित क्षेत्र बनाने की बात कह रहा है। इस समूचे घटनाक्रम में अमेरिका की पश्चिम एशिया को लेकर पूर्व से चली आ रही अस्थायी और अस्पष्ट नीति एक बार फिर सामने आई है।

बीते कई सालों से महाशक्तियां मध्य-पूर्व को शतरंज की बिसात पर तोल कर शह और मात का खेल खेलती रही हैं। इसमें तेल की राजनीति के साथ मजहब की जोर आजमाइश को बढ़ावा दिया गया है। विश्व के संपूर्ण उपलब्ध तेल का लगभग छियासठ प्रतिशत ईरान की खाड़ी के आसपास के इलाकों, मुख्य रूप से कुवैत, ईरान और सऊदी अरब में पाया जाता है। सोवियत संघ और अमेरिका तो तेल के मामले में आत्मनिर्भर हैं, लेकिन यदि यूरोप को इस इलाके से तेल मिलना बंद हो जाए तो उसके अधिकांश उद्योग धंधे बंद हो जाएंगे और इस प्रकार यूरोपीय महाद्वीप की औद्योगिक और सामरिक क्षमता बर्बाद हो जाएगी। यही कारण है कि पश्चिमी देश मध्य-पूर्व पर अपना नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं।

ईरान को रोकने के लिए अरब राष्ट्रवाद को तोड़ने की जरूरत थी और इसी का परिणाम हुआ कि वर्तमान में मध्य-पूर्व शिया-सुन्नी के संघर्ष का अखाड़ा बन गया है। शिया बहुल ईरान की इस्लामिक क्रांति से नाराज अमेरिका ने सुन्नी राष्ट्रवाद की कट्टरता को उभारने में अभूतपूर्व योगदान दिया। इसका असर मध्य-पूर्व के एक महत्त्वपूर्ण देश सीरिया पर भी पड़ा। सीरिया में बहुसंख्यक सुन्नी हैं, जबकि वहां के राष्ट्रपति असद शिया हैं और ईरान समर्थित माने जाते हैं। सीरिया के पूर्व में इराक और उत्तर में तुर्की है। चौहत्तर फीसद सुन्नी आबादी वाले सीरिया में सत्ता अल्पसंख्यक शिया संप्रदाय के बशर अल असद के हाथों में है। उन्हें रूस, अपने पारंपरिक सहयोगी ईरान और ईरान के समर्थन वाले लेबनानी चरमपंथी गुट हिजबुल्ला से मजबूत कूटनीतिक और सैन्य सहयोग मिलता रहा है।

फिर 2011 में जब मशहूर 'अरब स्प्रिंग' विरोध प्रदर्शनों ने ट्यूनीशिया और मिस्र में सत्तापलट कर दिया था तो अमेरिका ने इसे असद को सत्ता से बेदखल करने के स्वर्णिम अवसर के रूप में देखा।

सीरिया की सत्ता से असद को हटाने के प्रयास में अमेरिका के मददगार वहां कई विद्रोही संगठन बन गए और इसी बीच आइएस इस इलाके में मजबूती से अपनी पैठ बनाने में सफल हो गया। साल 2013 में अलकायदा से अलग होकर आइएस अस्तित्व में आया और इससे मध्य-पूर्व में संघर्ष का एक नया सिलसिला शुरू हो गया। आइएस ने अमेरिकी योजनाओं के विपरीत ईसाइयों और उदार मुसलमानों के खिलाफ जेहाद की घोषणा कर मध्य-पूर्व के राजनीतिक संघर्ष की दिशा बदल दी। आइएस ने इस इलाके के तेल कुओं पर अपना कब्जा जमा कर महाशक्तियों के सामने चुनौती पेश कर दी और इसके बाद पश्चिमी देशों, अमेरिका, रूस, तुर्की जैसे देशों ने आइएस को मिल कर खत्म करने में अपनी भूमिका निभाई। लंबे समय से इस युद्धग्रस्त इलाके से आइएस समाप्त होने की कगार पर आया तो अब एक बार फिर तुर्की ने कुर्दों के खिलाफ मोर्चा खोल कर नए संकट को जन्म दे दिया है। कभी विरोधी रहे कुर्द सीरिया की असद सरकार से मिल कर तुर्की का प्रतिरोध कर रहे हैं। वहीं अब रूस भी कुर्दों के समर्थन में आ गया है।

तुर्की से कुर्दों का विरोध पारंपरिक माना जाता है और कुर्द तुर्की को अपने दुश्मन की तरह देखते हैं। पहले विश्व युद्ध में ऑटोमन साम्राज्य की हार के बाद पश्चिमी सहयोगी देशों ने 1920 में संधि कर कुर्दों के लिए अलग देश बनाने की बात कही थी। 1923 में तुर्की के नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने इस संधि को खारिज कर दिया था। तुर्की की सेना ने 1920 और 1930 के दशक में कुर्दिश उभार को कुचल दिया था। तब से कुर्दों और तुर्की के बीच दुश्मनी और गहरा गई। तुर्की में इस समय बीस फीसद कुर्द हैं। पीढ़ियों से तुर्की में कुर्दों के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार होता रहा है। तुर्की में कुर्दिश नाम और उनके रिवाजों को प्रतिबंधित कर दिया गया है। इसके साथ ही कुर्दिश भाषा भी प्रतिबंधित है। यहां तक कि कुर्दिश पहचान को भी खत्म कर दिया गया है। साल 2017 में इराक में अलग कुर्दिस्तान के लिए जनमत संग्रह हुआ तो भारी तादाद में कुर्दों ने इसके पक्ष में मत डाले। इसके बाद तुर्की कुर्दों को लेकर गहरे दबाव में आ गया। उसे डर है कि इस इलाके में कुर्दिस्तान के बनने से उसके देश में बसने वाले कुर्द विद्रोह कर कुर्दिस्तान में मिलने की मांग करेंगे और इससे तुर्की की संप्रभुता पर नया संकट खड़ा हो सकता है।

यूरोप के एकमात्र मुसलिम बहुल देश तुर्की के राष्ट्रपति की मुसलिम शरणार्थियों के नाम पर दी जा रही धमकियों से यूरोप, रूस और अमेरिका चिंतित हैं। ऐसे में सीरिया में संतुलन, ईरान को दबाने और इराक सहित अन्य खाड़ी देशों पर अपना प्रभाव जमाए रखने के लिए मुमकिन है कि आने वाले समय में अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र अलग कुर्दिस्तान की मांग को मान लें। ऐसा होने पर मध्य-पूर्व का भूगोल एक बार फिर बदल जाएगा और दक्षिणी-पूर्वी तुर्की, उत्तरी-पूर्वी सीरिया, उत्तरी इराक, उत्तर-पूर्वी ईरान और दक्षिण-पश्चिमी आर्मेनिया को मिला कर कुर्दिस्तान अस्तित्व में आ सकता है। कुर्दिस्तान सऊदी अरब और ईरान के प्रभुत्व को खत्म करने का पश्चिमी हथियार बन सकता है और बदलते वैश्विक परिदृश्य में इसकी संभावनाएं बलवती हो गई हैं।

विकल्प के रास्ते

संतोष उत्सुक

दुनिया मेरे आगे

यह हमारी पुरानी सांस्कृतिक, परंपरागत समृद्ध कार्यशैली है। बर्फ पड़ने से पहले, उच्चतरीय बैठक में नमकीन के साथ चाय पीकर, संभावित दिक्कतों से निपटने की पूरी तैयारी के बाद खबर छपवाई जाती है। लेकिन जब बर्फ पड़ती है तो सारा प्रबंधन पिघल जाता है। हमारे शरीर के महत्त्वपूर्ण हिस्से, प्लास्टिक पर प्रतिबंध के बारे में विकल्पहीनता व्यंग्यात्मक शैली में हंस रही है। प्लास्टिक की खतरनाक गोद में हम आराम से जी रहे हैं। प्लास्टिक इतना लुभावना, सस्ता, टिकाऊ और बिकाऊ है कि हम इससे आसानी से जुदा नहीं हो पा रहे हैं। अनेक गृहिणियों के पास कई दशक पुराने प्लास्टिक पात्र होंगे, जिन्हें उन्होंने संभाल कर रखा हुआ है। वे शायद उन्हें बहुत प्रिय हैं। खानपान और जीवन-शैली में हम मांसाहारी हों या शाकाहारी, लेकिन सब प्लास्टिकहारी जरूर हैं। प्रशासन द्वारा प्लास्टिक का प्रयोग बंद होने की मजबूरन पुष्टि करने से प्रयोग बंद नहीं होगा। क्या हम इतिहास में प्रवेश कर प्लास्टिक का आविष्कार करने वाले को सजा दे सकते हैं! 1907 में प्लास्टिक के आविष्कारक लियो हेंड्रिक बैकेलैंड को पता नहीं था कि इंसान प्लास्टिक को मानवता और प्रकृति के लिए इतना खतरनाक बना लेगा। यह 'सभ्य' इंसान द्वारा प्लास्टिक उत्पादों से उठाए अनुचित लाभ का उदाहरण है। कुदरत के साथ भी इंसान ने बेहद अनुचित किया।

राष्ट्रीय हरित पंचाट से लेकर देश की कई अदालतें प्लास्टिक पर पाबंदी लगाने के आदेश दे चुकी हैं। कई मामले अदालत में बहस की प्लास्टिक में लिपटे पड़े हैं। लाखों सामाजिक संस्थाएं जुटी हुई हैं, लेकिन कोई प्लास्टिक का विकल्प बताने को राजी नहीं। विकल्प शायद अभी तक उपलब्ध ही नहीं है। कपड़े का थैला, कागज का लिफाफा सीमित विकल्प हैं। कोई नहीं जानता कि रोज प्रयोग होने वाले दूध के करोड़ों पैकेट की नई पैकिंग कैसे होने वाली है! क्या सुबह से रात तक बिकने वाली पानी की करोड़ों बोतलों की जगह कांच या स्टील की बोतलें लेंगी? सैकड़ों कंपनियों के दर्जनों स्वादों में पैक होकर आने वाले जीभ ललचाऊ, स्वास्थ्य खराब करने वाले चिप्स और दूसरे अनगिनत उत्पाद क्या अब खुले मिलेंगे?

अखिल भारतीय प्लास्टिक विनिर्माता संघ के अनुसार करोड़ों के प्लास्टिक व्यवसाय में करोड़ों लोग प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। उससे ज्यादा संख्या में पेट यह उद्योग भरता है। इस व्यवसाय से सरकार को मिलने वाला राजस्व भी एक पक्ष है। बेचारी अधिकतर आम जनता फोन और मनोरंजन में व्यस्त अगले चुनाव तक सरकार का हुक्म बजाने को विवश है। लेकिन उद्योगपतियों के पास भी एकदम से कोई विकल्प नहीं है। सालों का जमा-जमाया व्यवसाय तुरंत बंद कर नए अपरिचित व्यवसाय के धरातल पर काम शुरू करना बच्चों का खेल नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपनी पुरानी छोटी से छोटी नौकरी तब छोड़ता है, जब उसे नई नौकरी मिल रही हो और उससे आय भी ज्यादा होने वाली हो।

प्लास्टिक बंद करने से पहले जरूरी है कि इस उद्योग में छोटे से बड़े स्तर तक जितने भी मजदूर, उद्योगपति, व्यवसायी, नौकरीपेशा, दुकानदार और अन्य लोग जुड़े हुए हैं, उनके साथ विस्तार से बातचीत हो, उनकी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें इस आवश्यक सामाजिक बदलाव के लिए नया व्यवसाय अपनाने को तैयार किया जाए। उन्हें समय दिया जाए, ताकि वे अपने और अपने परिवार के लिए रोजी-रोटी का प्रबंध कर सकें। इस बारे में सरकार उनकी मदद करने के संजीदा प्रयास करे। अभी तक किए गए प्रयास सिर्फ किसी को खुश करने तक सीमित लगते हैं। मान लीजिए दूध के पैकेट का विकल्प कांच की बोतल हो सकती है और प्लास्टिक पाउच बनाने वाली कंपनियां कांच की बोतल बनाना शुरू सकती हैं तो इसमें मानसिक तैयारी, तकनीक, कामगार, सरकारी सहयोग और समर्थन, मोटी धनराशि और वक्त भी चाहिए। स्मार्ट सिटी चंडीगढ़ जैसी विश्व प्रसिद्ध जगह पर सब्जी मंडी से मटर खरीदते हुए मैंने विक्रेता को पॉलिथीन बैग में न देकर कागज का लिफाफा देने को कहा तो उसने कहा- 'सर जी पहले पॉलिथीन के बैग का उत्पादन रुकना चाहिए'। मेरे पास बड़ा बैग था, लेकिन उसमें सारे फल और सब्जियां इकट्ठे डालना भी उचित न होता या फिर मैं कई छोटे थैले लेकर जाता।

एक स्थानीय दुकानदार ने बताया कि चालान किए जा रहे हैं, लेकिन जिनकी प्रशासनिक पहुंच है, उन्हें अभी भी ज्यादा परेशानी नहीं है। जो प्लास्टिक उत्पाद देश भर में बन चुके हैं, उन्हें चाहे प्रयोग न करें, लेकिन भविष्य में प्लास्टिक के विकल्प का होना योजना स्तर पर या बातों और सरकारी घोषणाओं में नहीं, बल्कि जूट या कपड़े के थैले की तरह वास्तविक रूप में उपलब्ध होना लाजिमी है। प्लास्टिक के उत्पादन को कम करते हुए आमजन के लिए इसका उपयुक्त विकल्प तैयार कर उसका प्रयोग बढ़ाना ही प्राथमिकता होनी चाहिए। कार्य-संस्कृति की शानदार परंपरा के अनुसार विकल्पहीनता के आसन पर बैठ कर अविलंब परिवर्तन की अपील करना हमारी श्रेष्ठ आदतों में शुमार है, जिसका शोधन और संशोधन अब बदलते वक्त की मांग है।

चौपाल

भूख से जंग

राफेल, चंद्रयान या तेजस ट्रेन जैसी हमारी तमाम कामयाबियों को 2019 के वैश्विक भूख सूचकांक के आंकड़े मुंह चिढ़ा रहे हैं। इनके मुताबिक भूख, कुपोषण व बाल विकास के मामले में 21वीं सदी में विश्व शक्ति बनने का दावा करने वाला भारत 117 देशों की सूची में 102 वें स्थान पर है। यह भारत का लगातार निराशाजनक प्रदर्शन है। 2018 में 119 देशों की सूची में वह 103 वें स्थान पर था। वैश्विक भूख सूचकांक दुनिया भर में भूख और कुपोषण को अपने चार पैमानों पर नाप कर सभी देशों की एक सूची तैयार करता है जिसमें कुपोषण, बाल मृत्युदर, उम्र के अनुपात में कम विकास और लंबाई के अनुपात में कम वजन को आधार बनाया जाता है। इस रिपोर्ट में भारत को उन 45 देशों के साथ रखा गया है जहां भूख को लेकर हालात चिंताजनक हैं। बल्कि इस सूचकांक में पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों ने भी भारत से बेहतर प्रदर्शन किया है। इस सूचकांक में पाकिस्तान 94 वें, बांग्लादेश 88 वें और श्रीलंका 66 वें स्थान रहा।

भारत का संविधान लोगों को भोजन का अधिकार और जीने का अधिकार देता है। इस रिपोर्ट ने उन तमाम सरकारी योजनाओं की नाकामयाबी की ओर इशारा किया है जो आजादी से लेकर अब तक भारत को भूख से मुक्त कराने के लिए बनाई गई थीं। साथ ही इसने भारत के खोखले विकास की तरफ इशारा किया है जो एक तरफ तो मंगल पर पहुंच रहा है वहीं दूसरी तरफ अपने नागरिकों को खानपान जैसी मूलभूत सुविधाएं तक मुहैया कराने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। उधर देश की एक समस्या यह भी है कि यहां प्रतिवर्ष लाखों टन अनाज गोदामों में सड़ जाता है और भारी मात्रा में खाना बर्बाद होता है। आज तक देश में भूख के कारण हो रही मौतों के पीछे किसी की कोई जवाबदेही तय नहीं हो सकी है। यदि समय रहते भारत को भूख की इस समस्या से निजात नहीं दिलाई गई तो यह आने वाले समय में भारत के भविष्य के लिए एक बेहद चिंताजनक स्थिति उत्पन्न करेगा। इस तरह तो तकनीक के कंधे से कंधा मिलाकर चलता भारत और दूसरी तरफ भूख से जंग लड़ता भारत कभी भी एक साथ नहीं आ पाएगा।

● *शक्ति प्रताप सिंह, रश्मि खंड, लखनऊ*

समय की मांग

एक बार इस्तेमाल होने वाली प्लास्टिक से बनी वस्तुओं के विकल्प रातोंरात उपलब्ध नहीं कराए जा सकते, लेकिन इस दिशा में तेजी से कदम उठाए जाने जरूरी हैं। प्लास्टिक के खिलाफ अभियान केवल प्लास्टिक की थैलियों की जगह जूट या कपड़े के थैले या फिर प्लास्टिक के कप के स्थान पर कुल्हड़ के इस्तेमाल को बढ़ावा देने तक सीमित नहीं रहना चाहिए। आखिर इसकी अनदेखी कैसे की जा सकती है कि वर्तमान में खान-पान की लगभग प्रत्येक सामग्री की पैकिंग प्लास्टिक में हो रही है? इसके अलावा दूध भी प्लास्टिक की थैलियों में मिल रहा है। इसे देखते हुए समय की मांग है कि वे कंपनियां भी इस अभियान में योगदान देने के लिए सक्रिय हों जो अपने उत्पादों की पैकिंग प्लास्टिक में करती हैं।

● *हेमंत कुमार, गोराडीह, भागलपुर, बिहार*

पराली के पीछे

धान की फसल काटने के बाद खेतों में बचने वाली पराली को संभालने के संसाधन व मशीनरी महंगी होने के कारण किसान पराली जलाने को मजबूर हो चुके हैं। इस सीजन के दौरान भी पंजाब के किसान पराली को आग ही लगा रहे हैं जिससे न सिर्फ पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित हो रहा है बल्कि खेतों की उपजाऊ शक्ति भी नष्ट हो रही है। पंजाब के ज्यादातर किसानों की तरफ से धान की दो किस्मों पूसा-44 व पीआर-118 समेत बासमती की बिजाई की जाती है और इन किस्मों के ज्यादा समय लेने की वजह से इनकी फसल अक्तूबर माह में बड़ी मुश्किल से तैयार हो पाती है।

अक्तूबर के ही चौथे सप्ताह में गेहूं की बिजाई का समय शुरू हो जाता है। ऐसे हालात में किसान धान की पराली की चौपर से कटाई करने के बाद उसे आग लगा देते हैं जिससे उनका समय व पैसा दोनों बच जाते हैं। हालांकि पंजाब के खेतीबाड़ी विभाग की तरफ से पिछले कई सालों से किसानों को पराली को जलाए बिना ही हैपीसीडर, जीरो ट्रिल ड्रिल, चौपर कम सलेंडर व पैडीबेलर के जरिए गेंहू की बिजाई करने की सलाह दी जाती है लेकिन यह सारी मशीनरी काफी महंगी होने के कारण पंजाब के ज्यादातर किसानों के पास उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा विलुप्त हो रही संयुक्त परिवार परंपरा के कारण ज्यादातर किसानों के पास काफी कम जमीन है और वे ऐसी महंगी मशीनरी खरीदना तो दूर, उसे किराये पर लेने की भी क्षमता नहीं रखते। यदि किसान पराली को आग न लगाए तो उसे कम से कम 25 सौ रुपए प्रति एकड़ अतिरिक्त खर्च करना पड़ेगा और खेतीबाड़ी का धंधा लाभदायक नहीं रहने की वजह से वह पैसा खर्च करने को तैयार नहीं है।

● *राजीव शर्मा, कोटकपूरा, पंजाब*

ध्रुवीकरण से दूर

सन 1986 से निरंतर चर्चा में बने रहने वाले राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद की सुनवाई आखिरकर उच्चतम न्यायालय ने पूरी कर दी है। सभी पक्षों की लिखित दलीलें मिलने के बाद पांच जजों का संविधान पीठ फैसला सुनाएगा। जिसने इस मामले को फौरी निगाहों से ही देखा होगा वह भी जनता होगा कि यह लड़ाई 2.77 एकड़ जमीन को लेकर है। इस मसले को देखकर प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' का पात्र सूरदास याद आ जाता है जो अपनी जमीन के टुकड़े को नहीं बेचना चाहता क्योंकि वह उसकी पैतृक संपत्ति है और उससे वह भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है। कुछ ऐसी ही स्थिति अयोध्या विवाद की है; एक जमीन का टुकड़ा है और ढेर सारी भावनाएं हैं!

लेकिन यह जमीन का टुकड़ा और भावनाएं एक और जगह भी होती हैं वे हैं हमारे गांव। हमारे गांवों में अक्सर देखा जाता था कि एक समाज के लोग जमीन दान कर दूसरे समाज के लोगों को गांव में लेकर आते थे भले ही यह प्रक्रिया वर्ण-व्यवस्था से प्रेरित थी लेकिन यह सामाजिक सद्भाव और विविधता को बढ़ाने वाली थी। यही हमारे भारत का स्वभाव रहा है जबकि अयोध्या मामला अलग ही दिखाई देता है। यह न केवल भारत के 'वसुधैव कुटुंबकम' आदर्श के विपरीत है बल्कि देश की समरसता को भी खतरा है। इसके अलावा यह मामला भावनाओं से कम, राजनीतिक ध्रुवीकरण से जुड़ा ज्यादा प्रतीत होता है। इसलिए सुप्रीम कोर्ट का फैसला चाहे जो हो इसे अवांछनीय ध्रुवीकरण से बचाना होगा और हमारी ग्रामीण संस्कृति की लाज रखनी होगी।

● *सचिन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 209

आंकड़ों का आशावाद

वृद्धि के अनुमानों में हर ओर से कटौती हो रही है। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) हो, विश्व बैंक हो, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) हो या रेटिंग एजेंसियां, निवेश बैंक और दूसरे पक्ष हों, सभी वृद्धि के अनुमानों को घटा चुके हैं। लगभग सभी ने इस वित्त वर्ष में भारत का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) 6 फीसदी रहने की बात कही है, कुछ ने इससे 10-20 आधार अंक कम और कुछ ने इतना ही ज्यादा। ज्यादातर विश्लेषक इसे निराशाजनक आंकड़ा मान रहे हैं क्योंकि कुछ अरसा पहले ही आर्थिक समीक्षा, आरबीआई की रिपोर्टों और दूसरे स्थानों पर 7 फीसदी के करीब आर्थिक वृद्धि का अनुमान लगाया जा रहा था। 6 फीसदी का अनुमान निश्चित रूप से पिछले वर्ष के 6.8 फीसदी के आंकड़े से बहुत कम है। हम 2012-13 के बाद से सबसे सुस्त आर्थिक वृद्धि से रूबरू हो रहे हैं।

इस वर्ष आर्थिक वृद्धि की दर 6 फीसदी रहने का अनुमान भी आशावादी लग रहा है क्योंकि पहली तिमाही में दर केवल 5 फीसदी रही थी और दूसरी तिमाही भी ज्यादा खुशखबरी लेकर नहीं आई है। यदि इस पूरे वर्ष में 6 फीसदी वृद्धि दर हासिल करनी है तो अक्टूबर से मार्च के बीच 7 फीसदी की वृद्धि होनी ही चाहिए। लेकिन इसका दावा कौन कर सकता है, जब आंकड़े बता रहे हैं कि निर्यात-आयात में लगातार कमी आई है, कारों की बिक्री गिरी है और औद्योगिक उत्पादन सूचकांक एक बार फिर उत्पादन में कमी का संकेत दे रहा है? इतना काफी नहीं तो कर राजस्व (खास तौर पर जीएसटी राजस्व) बजट के अनुमान से पिछड़ रहा है, कर रियायत से पहले कंपनियों के नतीजे निराशाजनक हैं, कर्ज का प्रवाह बहुत लचर है, ईंधन की खपत धीमी हो रही है, मकान बिक नहीं रहे हैं, पूंजीगत वस्तुओं के ऑर्डर बहुत कम हैं और दैनिक उपभोग के सामान की बिक्री भी सुस्त पड़ रही है। अब तक तेजी से बढ़ रहे विमानन एवं सीमेंट जैसे उद्योगों में भी नाममात्र की वृद्धि दिख रही है। यह सब देखकर विश्लेषकों की इस बात पर यकीन नहीं हो रहा कि अर्थव्यवस्था फिर तेज होने लगी है। फिर भी आरबीआई के सर्वेक्षण में अर्थव्यवस्था को संतोषजनक बताने वाले विश्लेषक जब जुलाई-सितंबर तिमाही में 5.8 फीसदी वृद्धि दर के साथ चालू तिमाही में 6.4 फीसदी तथा अगली तिमाही में 7.2 फीसदी वृद्धि का अनुमान लगाते हैं तो वे सही भी हो सकते हैं। केवल तीन तिमाहियों में 5 फीसदी से 7.2 फीसदी उछाल की जो उम्मीद वे जता रहे हैं, उसकी वजह सांख्यिकी का पुराना खेल है। यह कम आधार का खेल है, जिससे वृद्धि की तुलना की जाती है। इसी कारण 2020-21 में 7 फीसदी या अधिक आर्थिक वृद्धि के अनुमान को हकीकत से दूर नहीं मानना चाहिए।

साप्ताहिक मंथन

टी. एन. नाइनन

इन आंकड़ों को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें नोटबंदी के बाद अप्रैल-जून 2017 तिमाही में 5.6 फीसदी रह गई वृद्धि से शुरुआत करनी होगी। इस निम्न आधार की वजह से एक साल बाद की समान तिमाही में वृद्धि दर 8.2 फीसदी पहुंच गई। हालांकि इस उच्च आधार दर के चलते अप्रैल-जून 2019 में वृद्धि दर गिरकर 5 फीसदी पर आ गई। अगर कोई इस सांख्यिकीय उतार-चढ़ाव को ध्यान में रखे और तीनों वर्षों में पहली तिमाही की औसत वृद्धि दर निकाले तो आंकड़ा 6.3 फीसदी रहता है। यह आंकड़ा निष्प्रभावी होते हुए भी ऐसा नहीं है कि एक सुस्त पड़ती विश्व अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक शिकायत की जाए। अगर इन तीनों वर्षों में वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही यानी जुलाई-सितंबर के लिए भी यही गणना करें तो औसत वृद्धि 6.4 फीसदी रहती है जो खास बदलाव नहीं दिखाता है। इसकी तुलना में तीसरी एवं चौथी तिमाहियों के पूर्वानुमान हल्के सुधार की तरफ इशारा करते हैं। इन तिमाहियों के लिए इन तीन वर्षों की औसत वृद्धि क्रमशः 6.7 फीसदी और 6.9 फीसदी रहने का अनुमान है। दूसरे शब्दों में, पूर्वानुमान जताने वालों को वित्त वर्ष की दूसरी छमाही में केवल धीमा सुधार होने की ही उम्मीद है।

क्या इस विनम्र आशावाद को उचित ठहराया जा सकता है? आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से आ रहे गिरते आंकड़ों की ताकत के आधार पर तो अभी ऐसा नहीं लग रहा है। आर्थिक सुधार में इस बात से भी मदद नहीं मिलेगी कि वैश्विक अर्थव्यवस्था आईएमएफ के शब्दों में एक 'समकालिक सुस्ती' के दौर से गुजर रही है। लेकिन गिरावटों का दौर खत्म होगा और आखिरकार वृद्धि का दौर लौटेगा। लिहाजा अगले वित्त वर्ष की पहली छमाही का इंतजार करें जब वर्ष 2019 के निम्न सांख्यिकीय आधार की वजह से कुछ जादुई आंकड़े सामने आएंगे। यह वह वक्त होगा जब सरकार की प्रचार मशीन पूरे जोरशोर से सक्रिय होगी।

अजय मोहंती

विश्वविद्यालय रैंकिंग का गहराता भ्रम

वैश्विक रैंकिंग में भारतीय विश्वविद्यालयों की खराब हालत पर चिंतित होने के बजाय हमें उद्यमशीलता को बढ़ावा देने एवं बदलते दौर के हिसाब से ढलने की जरूरत है। बता रहे हैं अजित बालकृष्णन

यही मौसम है: इस त्योहारी मौसम में जब खुदरा बिक्री शृंखलाएं अपने उत्पादों की पेशकश और अविश्वसनीय रूप से सस्ती नजर आने वाली कीमतों को लेकर मीडिया में ढिंढोरा पीट रही हैं, उसी समय ब्रिटेन, अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालय भारतीय मीडिया में मौजूदगी दर्ज कराते हुए भारतीयों को लुभाने में लगे हुए हैं। दोनों के बीच फर्क बस यह है कि भुगतान-आधारित विज्ञापनों पर पैसे खर्च करने के बजाय मीडिया कंपनियों की रेटिंग को जरिया बनाकर अपना दावा पेश करते हैं। टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग्स, यूएस न्यूज़ और वर्ल्ड बेस्ट कॉलेजेज रिपोर्ट जैसी शैक्षणिक संस्थान रेटिंग की सूची काफी लंबी है।

आश्चर्य की बात यह है कि सम्मानित भारतीय मीडिया भी इन रैंकिंग को पूरी जगह देतीं है। इस साल की टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग से जुड़ी खबर 'वैश्विक रैंकिंग में भारत शीर्ष 300 के बाहर', 'वैश्विक रैंकिंग में भारतीय विश्वविद्यालय शीर्ष 300 के बाहर' और 'ऊंची रैंकिंग क्यों नहीं हासिल कर सकते हैं भारतीय विश्वविद्यालय?' जैसे शीर्षकों के साथ पेश की गई। कुछ मीडिया रिपोर्ट में इस रेटिंग को थोड़ा सहज अंदाज में 'वैश्विक रैंकिंग में भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति सुधरी' और 'शीर्ष 200 में 25 संस्थान शामिल' के रूप में पेश किया गया। लेकिन इसके साथ यह भी जुड़ा था कि यह स्थिति उभरती अर्थव्यवस्थाओं के विश्वविद्यालयों की सूची की है।

अब भी कई लोग भारतीय विश्वविद्यालयों के बारे में इस तरह की 'बुरी' खबर के बारे में प्रतिक्रिया लेने की कोशिश करते हैं, मसलन 'नाखुश आईआईटी संस्थानों ने की टाइम्स रैंकिंग की शिकायत, मानव संसाधन मंत्रालय ने पहले खुद को दुरुस्त करने को कहा।' एक और खबर में कहा गया कि 'कोई भी भारतीय संस्थान टाइम्स रैंकिंग के शीर्ष 200 में जगह बनाने में रहा नाकाम, आईआईटी दिल्ली एवं बंबई को नए संस्थानों ने पीछे छोड़ा'। आईआईटी दिल्ली के निदेशक रामगोपाल राव को यह कहते हुए उद्धृत किया गया कि रेटिंग तय करने की पद्धति अस्पष्ट एवं अपारदर्शी है। मानव संसाधन मंत्रालय का यह बयान भी पेश किया गया कि मंत्रालय की नजर में संस्थानों को आत्मनिरीक्षण की जरूरत है। मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा, 'पुराने संस्थानों को रैंकिंग में नुकसान होने की वजह यह है कि टाइम्स रैंकिंग में प्रति शिक्षक उत्पादकता का तरीका इस्तेमाल होता है। मान लीजिए, आपने 100 शोधपत्र प्रकाशित किए और आपके पास 10 शिक्षक हैं तो आपकी प्रति-शिक्षक उत्पादकता 10 हुई। वहीं दूसरे संस्थान में 250 शिक्षक मिलकर 500 पत्र पेश करते हैं तो उनकी उत्पादकता महज 2 हुई। यही वजह है कि पुराने आईआईटी पीछे रह जा रहे हैं।'

अगर आप टाइम्स हायर एजुकेशन रैंकिंग्स में प्रयुक्त गणना-पद्धति पर बारीक निगाह डालें तो वह कहता है, 'हम सावधानी से बनाए गए प्रदर्शन संकेतकों का इस्तेमाल करते हैं जिन्हें पांच समूहों में बांटा गया है: शिक्षण (सीखने का परिवेश), शोध (मात्रा, आय एवं प्रतिष्ठा), प्रशस्ति (शोध प्रभाव), अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य (स्टाफ, छात्र एवं शोध) और उद्योग आय (ज्ञान का हस्तांतरण)।' यह सब सुनने में अच्छा लगता है, सिवाय इसके कि इन संकेतकों के कई प्रमुख हिस्से एक सर्वे से लिए गए हैं। यह सर्वे मुख्यतः अमेरिका एवं ब्रिटेन से संबंधित 11,554 अनुभवी एवं प्रकाशित विद्वानों के बीच किया गया था।

लेकिन इसमें यह जिक्र भी किया गया है कि भारतीय संभ्रांत वर्ग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका, ब्रिटेन या ऑस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालयों में भेजना पसंद करता है। लेकिन इस समस्या का एक हिस्सा यह है कि भारत का कुलीन तबका अपने बच्चों को सबसे अच्छे स्कूलों में भेजता है और फिर बेहतरीन अंडर-ग्रैजुएट कॉलेजों में भी उन्हें प्रवेश दिला देता है। लेकिन कुलीन परिवारों के ये बच्चे आईआईटी, एनआईटी और आईआईएम जैसे भारत के बेहद प्रतिस्पर्द्धी उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश की मुश्किल परीक्षा पास करने में नाकाम हो जाते हैं। मैंने देखा है कि प्रतिभा पर जोर देने वाले माता-पिता भी कई बार बच्चों के दबाव में आकर बैंक से एक करोड़ रुपये से भी अधिक कर्ज लेकर उन्हें विदेश भेजने को राजी हो जाते हैं। इसकी वजह यह है कि ये बच्चे मां-बाप पर भावनात्मक दबाव बनाने लगते हैं। मसलन- 'मेरी क्लास के सारे बच्चे पढ़ने के लिए विदेश जा रहे हैं, आप मुझे बाहर क्यों नहीं भेज सकते हैं?'

अमेरिकी, ब्रिटिश एवं ऑस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालयों को भी भारतीय छात्र पसंद हैं। दरअसल ये छात्र उनके अपने देशों के छात्रों की तुलना में दोगुने से लेकर पांच गुना तक फीस देने को तैयार होते हैं। शीर्ष विश्वविद्यालयों में ऐसे छात्रों का अनुपात करीब 10 फीसदी तक होता है। पढ़ाई के लिए विदेश जाने वाले भारतीय छात्रों की बड़ी संख्या कारोबारी परिवारों से ताल्लुक रखती है और वे वापस लौटकर अपना पारिवारिक व्यवसाय संभाल लेते हैं।

बहुत अच्छी आर्थिक स्थिति नहीं रखने वाले माता-पिता को भी ऐसा लगता है कि अगर वे कर्ज लेकर अपने बच्चों को पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में पढ़ा देते हैं तो वहां के पुराने छात्रों के नेटवर्क की मदद से उन्हें भारत में काम कर रहे अमेरिकी एवं ब्रिटिश बैंकों या निजी इक्विटी फंडों में नौकरी मिल सकती है। ये ऐसे उद्योग हैं जिनमें भर्ती का मुख्य जरिया 'ओल्ड बॉयज नेटवर्क' ही होता है।

लेकिन क्या ये मुद्दे भारत की सही प्राथमिकता हैं या इन्हें प्राथमिकता होना चाहिए?

भारत समेत दुनिया भर में रोजगार पाने की क्षमता तय करने वाले कारक सूचना युग के प्रसार के साथ ही बुनियादी तौर पर बदल चुके हैं। अब यह केवल अंग्रेजी बोलने जैसे संप्रेषण कौशल और क्लर्क जैसे पुनरावृत्ति-परक कामों को अंजाम देने की सम्मति से निर्धारित नहीं हो रहा है। आज के समय में रोजगार हासिल करने की नई कुंजी डिजिटल विश्लेषण एवं क्रियान्वयन दक्षता होगी। इन दक्षताओं का बुनियादी स्वरूप बॉट्स एवं रोबोट पर निगरानी का व्यावसायिक कार्य का होगा। वहीं जटिल कार्यों के लिए मशीन लर्निंग, क्रिप्टोग्राफी, नेटवर्क साइंस एवं बायोइन्फॉर्मेटिक्स जैसे कौशल की जरूरत होगी। ऐसी दक्षता की जरूरत इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन के छात्रों को होगी बल्कि बी-कॉम, चार्टर्ड अकाउंटेंट और पत्रकारिता के छात्रों के लिए भी ये जरूरी होगा।

लेकिन ऐसी नौकरियां हर साल भारतीय विश्वविद्यालय से स्नातक करने वाले 60 लाख छात्रों में से 10 फीसदी की भी जरूरत नहीं पूरी कर पाएंगे। इन स्नातकों की बड़ी संख्या को आजीविका के साधन के तौर पर उद्यमशीलता अपनाने को मजबूर किया जा रहा है। लेकिन फिलहाल पूंजी उपलब्धता केवल कारोबारी घरानों के बच्चों तक ही सीमित होने के चलते भारत में उद्यमी बनना भी आसान नहीं है। भारत में वेंचर कैपिटल एवं निजी इक्विटी उद्योग मौजूदा समय में निष्क्रिय हालत में है क्योंकि इनका असल कारोबारी मॉडल पिछले दरवाजे से विदेशी कंपनियों को भारतीय बाजार में प्रवेश दिलाना ही है।

उद्यमशीलता को बढ़ावा देने की कुंजी यह है कि करीब 10 लाख वेंचर निवेशकों का घरेलू इंडिया ऐंजल निवेश समुदाय बनाया जाए। इसके लिए भारतीय ऐंजल निवेशक को सीमित दायित्व भागीदारी में होने वाली शुरुआती वित्तीय क्षति को अलग करने की व्यवस्था करनी होगी। आयकर अधिनियम की धारा 10 में संशोधन कर अन्य स्रोतों से होने वाली आय के बरक्स निवेशक को यह छूट दी जा सकती है। इस काम को संपन्न कराने और अपनी अगली पीढ़ी को बचाने की इस मुहिम में आप भी आवाज बुलंद करें।

तमिलों का दिल जीतने के लिए भाजपा को करने होंगे और प्रयास

सियासी हलचल

आदिति फडणीस

देश का दक्षिणी राज्य तमिलनाडु तेजी से एक स्वतंत्र गणराज्य जैसा बनता प्रतीत हो रहा है। वहां की राजनीतिक एवं सामाजिक बयार देश के शेष हिस्से के उलट बह रही है। कम से कम हाल के रुझानों से इस बात के संकेत जरूर मिल रहे हैं। इस साल देश में हुए आम चुनाव में राज्य ने द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम (द्रमुक)-कांग्रेस गठबंधन को समर्थन देकर देश के सियासी समीकरण को पूरी तरह बदल दिया।

कांग्रेस अपने नेताओं को लेकर भले ही चिंतित दिखाई दे सकती है या संविधान के अनुच्छेद 370 पर उसका रुख विरोधाभासी लग सकता है, लेकिन 5 अगस्त को द्रमुक के सांसद तिरुचि शिवा ने कश्मीर में लोकतंत्र और मानवता बहाल करने की वकालत कर इस मुद्दे पर द्रमुक की मंशा स्पष्ट करने से गुरेज नहीं किया।

जम्मू कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने के प्रस्ताव पर उन्होंने कहा, 'महाशय, हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि दुनिया की कोई शक्ति कश्मीर को मिला विशेष दर्जा नहीं छीन सकती है। अटल बिहारी वाजपेयी ने भी कश्मीर के लोगों से बातचीत शुरू की थी। बातचीत करना न केवल संविधान के अनुरूप तर्कसंगत है बल्कि मानवता का तकाजा भी यही कहता है। कृपया इस मामले में बल प्रयोग नहीं किया जाए। हमें कश्मीर के लोगों का दिल जीतना होगा।' कश्मीर मसले पर सभी संबंधित पक्षों से बातचीत की विपक्ष की मांग के साथ उनके बयान ने भी सुर में सुर मिला दिया।

इस महीने के शुरू में जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपनी लोकप्रियता के चरम पर थे तो एक नई बात देखने को मिली। पिछले दिनों जब तमिलनाडु के मामल्लपुरम या महाबलीपुरम में प्रधानमंत्री मोदी चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग के साथ अनौपचारिक बातचीत कर रहे थे तो ट्विटर पर 'मोदी वापस जाओ' (मोदी गो बैक) ट्रेंड कर रहा था। शी से मुलाकात के समय मोदी ने तमिलनाडु की पारंपरिक पोशाक पहनी थी, फिर भी प्रधानमंत्री तमिल लोगों का रोष दूर करने में नाकाम रहे। देश के शेष भाग में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को हराना लगभग असंभव हो गया है, लेकिन तमिलनाडु में उसके लिए हालात अलग हैं। हालांकि उसके पास ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम (अन्नाद्रमुक) के रूप में एक सहयोगी जरूर है, लेकिन आने वाले महीनों में नई राजनीतिक चुनौती उभर सकती है और राज्य में कमल खिलाने में भाजपा को मशक्कत करनी पड़ सकती है।

देश के शेष भाग में भाजपा को हराना लगभग असंभव हो गया है, लेकिन तमिलनाडु में उसके लिए हालात अलग हैं। हालांकि उसके पास ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम (अन्नाद्रमुक) के रूप में एक सहयोगी जरूर है, लेकिन आने वाले महीनों में नई राजनीतिक चुनौती उभर सकती है और राज्य में कमल खिलाने में भाजपा को मशक्कत करनी पड़ सकती है

अक्टूबर में जयललिता की सहयोगी शशिकला बेंगलूरु के निकट परप्पाना अग्रहारा जेल में कारावास की अवधि का दो तिहाई हिस्सा काट लेंगी। भ्रष्टाचार के मामले में वह जेल की सजा भुगत रही हैं। कर्नाटक पैरोल एवं फर्लो (गैर-हाजिरी की छुट्टी) नियमों के अनुसार जिस कैदी का व्यवहार अच्छा रहा है, वह अपने सजा की अवधि का दो तिहाई हिस्सा पूरा करने के बाद समय पूर्व रिहाई का पात्र हो जाता है। यह प्रावधान सांविधिक सलाहकार बोर्ड के निर्णय पर निर्भर करता है। ऐसा हुआ तो वह समय से पहले जेल से बाहर आ सकती हैं। जेल से रिहाई के बाद उन्हें अपनी पार्टी अम्मा मक्कल मुन्नेत्र काट्ची (एएमएमके) को दोबारा संगठित करने का समय मिल जाएगा। इस समय उनके भतीजे टीटीवी दिनाकरण पार्टी की कमान संभाल रहे हैं। अपना-अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए एएमएमके और अन्नाद्रमुक एक दूसरे के खिलाफ सियासी जंग लड़ रही हैं। जयललिता की विरासत, जो उनकी सबसे बड़ी मजबूती है, वह दांव पर लगी है। लोकसभा चुनाव में दिनाकरण की एएमएमके महज पांच प्रतिशत मत हासिल कर पाई थी और एक भी सीट नहीं जीत पाई थी। हालांकि अब काफी कुछ बदल चुका है। पार्टी को नया चुनाव चिह्न भी मिल गया है और कई लोग इससे बाहर जा चुके हैं और पार्टी ने अपनी ऊर्जा बचाए रखने के लिए 21 अक्टूबर को विक्रावंडी और नांगुनेरी विधानसभा चुनाव नहीं लड़ने का फैसला किया है।

तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में अभी कुछ वक्त है। राज्य में 2021 में चुनाव होंगे। राज्य में द्रमुक की लोकप्रियता 2019 के चुनाव जैसी ही बरकरार है या नहीं इसका पता 24 अक्टूबर को लगेगा जब विधानसभा उप-चुनाव के नतीजे आएंगे। हालांकि एक बात स्पष्ट है कि शशिकला की समय पूर्व रिहाई से राज्य की राजनीति कोई भी करवट ले सकती है। ऐसे में कई सवाल बरबस खड़े होते हैं। क्या वह जयललिता के वफादार लोगों को एक साथ लाने में सफल होंगी, जिससे अन्नाद्रमुक और एएमएमके के बीच मतों का बंटवारा नहीं होगा? या फिर द्रमुक 2019 के लोकसभा चुनाव की तरह ही जीत का परचम लहराएगी? क्या भाजपा तमिलनाडु में अपना प्रदर्शन सुधार पाएगी?

फिलहाल तो इन सवालों के स्पष्ट उत्तर नहीं दिए जा सकते हैं। 2021 में तमिलनाडु के साथ पश्चिम बंगाल में भी चुनाव हैं और इस वजह से भाजपा का प्रदर्शन जरूर कसौटी पर कसा जाएगा। शुरुआती संकेत तो यही मिल रहे हैं कि पश्चिम बंगाल में भाजपा के लिए अच्छी संभावनाएं हैं, लेकिन तमिलनाडु में लोगों का दिल जीतने के लिए इसे स्वयं में बदलाव करने होंगे।

कानाफूसी

केरल कांग्रेस में एक अनार सौ बीमार

कांग्रेस की केरल इकाई बहुतायत की समस्या का सामना कर रही है। वहां पार्टी के कम से कम चार ऐसे नेता हैं, जो मुख्यमंत्री के पद की आकांक्षा पाले हुए हैं। इस फेहरिस्त में एक ऐसे वरिष्ठ नेता भी शामिल हैं, जिन्हें पार्टी के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी का नजदीकी माना जाता है। वर्तमान लोक सभा में पार्टी के सबसे ज्यादा सांसद केरल से जीतकर आए हैं, इसलिए यह राज्य इस पुरानी पुरानी पार्टी की राजनीतिक प्रासंगिकता के लिए बहुत अहमियत रखता है। पार्टी के सूत्रों का कहना है कि पार्टी कार्यकर्ताओं और प्रभावशाली नायर समुदाय के समर्थन से उम्मीदवारों के आसार तय होंगे। इसमें एक पूर्व केंद्रीय मंत्री का सुझाव भी अहम होगा, जिन्हें सोनिया गांधी के नजदीक माना जाता है।

गधे की कहानी

बीसवीं पशुगणना का दिलचस्प तथ्य गधों की संख्या में भारी गिरावट है। देश में वर्ष 2012 से 2019 के बीच गधों की संख्या में करीब 62 फीसदी कमी आई है। गधों की घटती आबादी इस बात का संकेत है कि देश में छोटे-मोटे सामान की ढुलाई में वाहनों का प्रयोग बढ़ रही है। कुछ दशक पहले तक देश के बहुत से कस्बों एवं शहरों में घोड़े एवं खच्चर परिवहन के मुख्य साधन थे। लेकिन इनकी संख्या में 2012 से 2019 के बीच करीब 46 फीसदी गिरावट आई है। रोचक यह है कि सभी राज्यों में उत्तर प्रदेश में गधों की संख्या में सबसे ज्यादा गिरावट 72 फीसदी आई है।

आपका पक्ष

मोदी ने किया काम, लाभ उठाएं राज्य

विपक्ष भले ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के प्रयासों की जितनी आलोचना करे लेकिन विदेशों में जो उन्होंने प्लेटफॉर्म तैयार किया है उसका लाभ राज्य सरकारों को उठाने की जरूरत है। आज देश के लगभग सभी राज्यों में कोई न कोई खनिज संपदा प्रचुर मात्रा में उलब्ध है। राज्यों में इस का खनन होता है और कच्चा माल विदेशों में कौड़ियों के भाव पर भेज दिया जाता है। यही कच्चा माल विदेशों से उत्पाद बनकर महंगे दामों पर वापस भारत आ जाता है। अगर देश में ही संयंत्र स्थापित किए जाएं तो कच्चे माल का उचित इस्तेमाल हो सकेगा तथा इससे बनने वाला उत्पाद भी कम दाम पर मिलने लगेंगे। इससे रोजगार के अवसर का सृजन भी होगा और बेरोजगारों को रोजगार मिलने लगेंगे। अतः राज्य सरकारें पूंजी निवेशकों को आकर्षित करे और उन्हें बिजली, पानी, सड़क तथा अन्य बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराएं। इसके अलावा संबंधित प्रस्तावों का विस्तार से वर्णन करे जिससे निवेशक यहां निवेश करने लगेंगे। इससे देश के विभिन्न राज्यों में संयंत्र स्थापित होने लगेंगे जिससे देश की अर्थव्यवस्था भी मजबूत होने लगेगी।

घेवरचंद गोदीका, जयपुर

प्रधानमंत्री ने अमेरिका में 'हाउडी मोदी' कार्यक्रम में निवेश का आमंत्रण दिया था

पुलिस तंत्र में सुधार की जरूरत

देश में पुलिस की भूमिका पर सवाल उठते रहे हैं। राजनीतिक शरण में रहने वाले कुछ अपराधियों के खिलाफ सही कार्रवाई नहीं होने से हमारा प्रजातंत्रीय ढांचा एक दिन गिर सकता है। वर्तमान में जिस तरह से राजनीति, प्रशासन और अपराधियों की सांठगांठ हो रही है यह चिंताजनक है। भारत के अनेक हिस्सों में आंतरिक सुरक्षा की गंभीर समस्या है। इसलिए वहां भारी पुलिस बल की तैनाती होती है। हमारी प्रणाली में बहुत कमियां हैं जैसे बुनियादी ढांचे की कमी, परिवहन व्यवस्था में कमी, खराब आवासीय व्यवस्था, अपर्याप्त दूरसंचार तंत्र तथा निचले स्तर पर भ्रष्टाचार का अधिक होना। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में राज्य सरकारों को पुलिस तंत्र में सुधार के लिए निर्देश दिए थे। इनमें पुलिस को दबाव से मुक्त रखने के लिए राज्य सुरक्षा आयोग, जवाबदेही के तय करने के लिए शिकायत प्राधिकरण का गठन, पुलिस महानिदेशक के चयन में पारदर्शिता लाना आदि है। लेकिन आज तक इस पर अमल नहीं हो पाया है। आईटी क्षेत्र में देश ने चाहे जितनी प्रगति कर ली हो लेकिन आज भी कई थानों में इंटरनेट की सुविधा नहीं है। पुलिस तंत्र में सुधार की जरूरत उनकी गरिमा बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि पुलिस की जवाबदेही तय करने के लिए है। आज एक ऐसा वातावरण तैयार करने की जरूरत है जिसमें कानून का शासन बनाए रखना पहला कर्तव्य हो।

संगीता चौधरी, जयपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।

दैनिक जागरण

आस्था और दृढ़ इच्छाशक्ति से कठिन कार्य भी आसान हो जाते हैं

आतंक का पोषक पाक

इस पर हैरत नहीं कि आतंकी फंडिंग पर निगाह रखने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्था एफएटीएफ ने फिर यह पाया कि पाकिस्तान ने आतंकवाद को पोषित करने वाले तौर-तरीकों पर लगाम लगाने का काम नहीं किया है। एक ऐसा देश जिसने आतंकवाद को अपने शासन का हिस्सा बना रखा हो और जहां की सेना आतंकी संगठनों को पालने-पोसने का काम करती हो उसके बारे में यदि एफएटीएफ यह उम्मीद कर रही है कि वह आसानी से सही राह पर आ जाएगा तो यह खुशफहमी ही अधिक है। क्या यह अजीब नहीं कि पाकिस्तान 27 बिंदुओं में से पांच पर ही उम्मीदों पर खरा उतर सका, फिर भी उसे मोहलत दे दी गई? कहीं पाकिस्तान को यह मोहलत चीन, तुर्की और मलेशिया की पैरवी के कारण तो नहीं मिली? सच जो भी हो, इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जहां चीन इस समय एफएटीएफ का प्रमुख है वहीं मलेशिया और तुर्की पाकिस्तान के नए हमदर्द बनकर उभरे हैं। भारत को यह समझना होगा कि आतंक समर्थक पाकिस्तान के प्रति एफएटीएफ की ओर से पर्याप्त सख्ती न दिखाया जाना शुभ संकेत नहीं।

पाकिस्तान आसानी से आतंक की राह छोड़ने वाला नहीं, इसका प्रमाण केवल यही नहीं कि वह एफएटीएफ के दबाव के बावजूद आतंकी संगठनों को संरक्षण देने से बाज नहीं आ रहा, बल्कि यह भी है कि वहां के शासक इसे अपनी जीत के रूप में रेखांकित कर रहे हैं कि उनका मुल्क काली सूची में शामिल होने से बच गया। वहां के मीडिया का भी यही स्वर है कि अगर पाकिस्तान काली सूची में नहीं जा सका तो यह उसकी जीत ही है। ऐसे स्वरों से यह अच्छे से समझा जा सकता है कि पाकिस्तान को इस पर कोई शर्मिंदगी नहीं कि वह आतंकवाद के खिलाफ उचित कार्रवाई न करने के कारण एक वैश्विक संस्था की ग्रे लिस्ट में है। यह भारत का दुर्भाग्य ही है कि ऐसा ढीठ देश उसका पड़ोसी है। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि जहां उसकी ओर से पाकिस्तान की घेरेबंदी जारी रहे वहीं अगर वह आतंक का रास्ता न छोड़े तो उसे एफएटीएफ की काली सूची में अवश्य डाला जाए। एफएटीएफ की काली सूची में जाने पर पाकिस्तान ईरान और उत्तर कोरिया के बाद ऐसा तीसरा देश होगा जिसे विश्व समुदाय दुनिया के लिए खतरे के तौर पर देखेगी। सच तो यह है कि वह अभी भी दुनिया के लिए खतरा ही है। उचित यह होगा कि भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष सरीखी संस्थाओं को इससे परिचित कराए कि पाकिस्तान की धरती पर पल रहे किस्म-किस्म के आतंकी जितना भारत के लिए खतरा बने हुए हैं उतना ही अफगानिस्तान के लिए भी।

इजरायल दौरा

झारखंड के किसानों का एक और दल इन दिनों इजरायल दौरे पर है। चार दिवसीय इस दौरे का उद्देश्य राज्य के किसानों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कृषि के क्षेत्र में आ रहे बदलावों से अवगत कराना और उन्हें कृषि की अत्याधुनिक तकनीक से जोड़ना है। इससे पहले भी तीन टीमें जा चुकी हैं। इनमें एक दल महिला किसानों का था। झारखंड देश का पहला राज्य है जिसने एक वर्ष के भीतर इतने किसानों को इजरायल भेजा है। कृषि के क्षेत्र में अपेक्षाकृत पिछड़े माने जाने वाले झारखंड राज्य की इस पहल की जितनी भी सराहना की जाए कम है। किसानों के इजरायल दौरे का किसानों का फायदा भी मिलना शुरू हो गया है। पूर्व में इजरायल भेजे गए किसान अब मास्टर ट्रेनर के रूप में अन्य किसानों को खेती की नवीनतम तकनीक से अवगत करा रहे हैं। नए तरीके से कुछ फसलों की खेती छिटपुट तौर पर शुरू हुई है। बताने की जरूरत नहीं कि किसान खुशहाल होंगे तो राज्य की अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ होगी, लेकिन इसे व्यापक तरीके से पूरे राज्य में लागू करना होगा। इजरायल ने अपनी अत्याधुनिक खेती से पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। पानी की कमी और खेती योग्य पर्याप्त भूमि न होने के बावजूद इस देश ने कम समय में ही वह कर दिखाया है जो तमाम विकसित देश नहीं कर सके। इससे भारत समेत दुनिया के तमाम देशों को सीखने की जरूरत है। राज्य के किसानों को आधुनिक खेती की ओर मोड़ने के लिए कई और क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे। इजरायल मॉडल को पूरी तरह झारखंड में लागू करना होगा। झारखंड में इजरायल के सहयोग से एक सेंटर ऑफ एक्सीलेंस बनाने के प्रस्ताव पर पिछले वर्ष राज्य सरकार आगे बढ़ी थी, लेकिन फिलहाल यह ठंडे बस्ते में है। झारखंड दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में अभी भी राष्ट्रीय मानकों से कहीं पीछे है। इजरायल जैसे देशों की अत्याधुनिक डेयरी तकनीक से युक्त यदि कोई प्लांट झारखंड में स्थापित हो सके तो यह कहीं अधिक कारगर साबित होगा। इसी प्रकार कृषि के कुछ मॉडल प्रोजेक्ट इजरायल के तकनीकी सहयोग से लगाए जा सकते हैं, जहां किसानों को नियमित भ्रमण कराया जा सकता है।

झारखंड से किसानों को उन्नत खेती की आधुनिक तकनीक सीखने के लिए इजरायल भेजा जाना सराहनीय है

भरोसे की कमी से जूझते भारत-चीन

सुधींद्र कुलकर्णी

चीनी राष्ट्रपति के समक्ष सबसे बड़ी कूटनीतिक चुनौती यही है कि भारत के साथ रिश्ते कैसे बेहतर बनाए जाएं जिनमें परस्पर विश्वास की कमी है

अवधेश राजपूत

मामल्लपुरम में भारत-चीन के शासनाध्यक्षों की मुलाकात से पहले पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान, सेना प्रमुख और आइएसआइ मुखिया के साथ शी चिनफिंग की गलबहियों ने ऐसे भारतीय विश्लेषकों की त्योरियां और चढ़ा दी थीं जिन्हें चीन फूटी आंख नहीं सुहाता। उन्होंने मामल्लपुरम में वार्ता से पहले ही उसका मर्सिया पढ़ना शुरू कर दिया था कि वुहान वाली भावना हवा हो गई और अनौपचारिक वार्ता के दौर की यह दूसरी कड़ी यहीं दम तोड़ देगी, फिर भी मोदी ने इसे सफल बनाया। उन्होंने कहा कि 'चेन्नई कनेक्ट' के जरिये परस्पर विश्वास की ऐसी भावना विकसित हुई जिससे भारत-चीन सहयोग में एक नए दौर की शुरुआत होगी। आखिर पासा किसने पलटा? वह शख्स कोई और नहीं, बल्कि माओत्से तुंग के बाद चीन के सबसे शक्तिशाली नेता शी चिनफिंग हैं। उन्होंने पाकिस्तान और भारत को एक साथ साधकर बेहद मुश्किल नजर आने वाली कूटनीतिक बाजी अपने नाम की। चीनी राष्ट्रपति के समक्ष सबसे बड़ी कूटनीतिक चुनौती यही है कि भारत के साथ रिश्ते कैसे बेहतर बनाए जाएं जिनमें परस्पर विश्वास की कमी है। उनकी यह चुनौती तब और जटिल हो जाती है जब उन्हें यह काम पाकिस्तान के साथ चीन के परंपरागत रिश्तों को कमजोर किए बिना करना हो। तमाम भारतीय मानते हैं कि पाकिस्तान के करीबी किसी देश पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इसी तरह तमाम पाकिस्तानियों को भी यह खटकता है कि उनका सदाबहार दोस्त उनके 'दुश्मन' भारत के साथ मेलजोल बढ़ा रहा है। ऐसे माहौल में पहले इमरान और फिर मोदी के साथ मुलाकात में शी ने दोनों को दोस्ती का भरोसा दिलाया। शी की भाव-भंगिमा पर गौर करने वालों ने स्वाभाविक रूप से देखा होगा कि पाकिस्तानी राजनीतिक-सैन्य नेतृत्व के साथ औपचारिक वार्ता के उलट मोदी संग अनौपचारिक वार्ता में चीनी राष्ट्रपति कहीं ज्यादा सहज और दोस्ताना नजर आए। ऐसे में 'चेन्नई कनेक्ट' महज एक कूटनीतिक जुमले से कहीं ज्यादा मोदी और शी के बीच उभरते नए रिश्तों की अभिव्यक्ति कराता है। सबसे बड़े पड़ोसी के साथ रिश्त सुधारने में मोदी ने गजब की परिपक्वता और चातुर्य का परिचय दिया है और इसमें वह धीरे-धीरे ही सही, लेकिन रणनीतिक कड़ियां भी जोड़ रहे हैं। इस मुश्किल कवायद में मोदी के समक्ष चुनौतियां स्पष्ट हैं। बतौर प्रधानमंत्री अपने साढ़े पांच वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने पाकिस्तान के साथ निरंतरता वाली कोई नीति नहीं अपनाई। न ही पाकिस्तानी सत्ता प्रतिष्ठान ने मोदी के भरोसा बढ़ाने वाले सकारात्मक कदमों पर उचित प्रतिक्रिया दी। मोदी के समर्थक भी पाकिस्तान के प्रति बहुत कट्टर हैं। वास्तव में सत्ता में उनकी दोबारा वापसी कराने में इस पहलू की अहम भूमिका रही। ऐसे में उनके लिए चीन के साथ गलबहियां जारी रखना आसान नहीं होगा, खासतौर से ऐसे देश के साथ जो पाकिस्तान जैसे पुराने सहयोगी का साथ नहीं छोड़ने जा रहा। इसके बावजूद मोदी ने चेन्नई बैठक को लेकर जताई जा रही उन आशंकाओं को निर्मूल साबित किया जो भारत-चीन-पाकिस्तान के बीच अंतर्निहित विरोधाभासों के चलते उसकी नाकामी का अंदेशा जता रही थीं।

इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि हाल के दौर में किसी विदेशी नेता के भारतीय दौरे को लेकर जनता में इतनी उत्सुकता नहीं रही जितनी मामल्लपुरम में शी के आगमन को लेकर रही। बीजिंग में इमरान के साथ शी की मुलाकात में दोनों नेताओं के बीच कोई तारतम्य नहीं दिखा, जबकि चीनी राष्ट्रपति के साथ मोदी की मुलाकात में दिखा कि वह शी के साथ दोस्ती बढ़ा रहे हैं और यह बराबरी के स्तर पर हो रहा है।

चेन्नई में मोदी-शी बैठक के इस पहलू ने भी भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट किया कि दोनों की वार्ता में कश्मीर मुद्दे का जिक्र नहीं हुआ। जिक्र हुआ भारत, चीन एवं शेष विश्व के समक्ष आतंकवाद और धार्मिक उन्माद के खतरे का। माना जाता है कि बीजिंग में इमरान, जनरल बाजवा और आइएसआइ प्रमुख से वार्ता में शी ने इसी मसले पर चर्चा की होगी। यह भी संभव है कि शी ने मोदी को इसके बारे में सूचित किया होगा। यह सोचना उचित नहीं होगा कि चीन आतंकवाद या इस्लामिक अलगाववाद के प्रति कोई नरमी रखता होगा, क्योंकि अपने मुस्लिम बहुल प्रांत झिनजियांग में वह खुद इस खतरे को झेल रहा है। पाकिस्तान भी धार्मिक उन्मादियों से पीड़ित है। ऐसे में यह सही समय है कि भारत-चीन और पाकिस्तान इस साझा खतरे से निपटने के लिए सार्थक संवाद शुरू करें। भारतीय, चीनी और पाकिस्तानी नेताओं के साथ अपनी तमाम वार्ताओं में मैंने तीनों देशों के बीच नियमित रूप से ट्रैक-टू कूटनीति को सिरे चढ़ाने की वकालत की है। इससे तीनों देशों के शीर्ष नेताओं के बीच शिखर वार्ता की बुनियाद तैयार होगी।

प्राचीन मंदिरों वाले समुद्र तटीय शहर मामल्लपुरम में शी के साथ संवाद के दौरान मोदी ने एक और महत्वपूर्ण पहलू जोड़ा। यहां हिंदू मंदिरों, आख्यानों और संस्कृति के नयनाभिराम दृश्य दिखाई पड़े। यह प्राचीनकाल में भारत और चीन के बीच सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक कड़ियों को प्रदर्शित करता है जिससे शी भलीभांति परिचित होंगे। शी ने अपने जीवन के 18 वर्ष चीन के दक्षिण पूर्वी फुजियन प्रांत में कम्युनिस्ट पार्टी के कनिष्ठ अधिकारी के तौर पर गुजारे हैं। फुजियन में ऐसी जगहें हैं जिनके तार भारत विशेषकर तमिलनाडु से जुड़े हैं। कुछ साल पहले मैं ग्वांगझू गया था जहां मैंने 1,300 साल पुराना एक काइयुआन मंदिर देखा जिसमें शिव, कृष्ण और नरसिंह भगवान की प्रतिमाएं थीं। मामल्लपुरम में मोदी जब शी को मंदिर दिखा रहे थे तब शी ने ग्वांगझू का जिक्र किया। ग्वांगझू के सामुद्रिक संग्रहालय में मध्यकालीन इतिहास के दौरान भारत और चीन के बीच की तमाम इस्लामिक कड़ियों के नमूने रखे हैं। यह सुखद है कि भारत-चीन रिश्तों की 70वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में मोदी और शी ने एक पोत पर कांफ्रेंस करने का एलान किया जिसमें विश्व की दो प्राचीन सभ्यताओं के बीच ऐतिहासिक जुड़ाव की कड़ियां जोड़ी जाएंगी। इतिहास के इन विस्मृत अध्यायों का पुनरावलोकन चेन्नई कनेक्ट की बड़ी थाती रही।

चेन्नई सम्मेलन का सबसे खास पहलू यही है कि शी ने चीन-भारत संबंधों को सुधारने के लिए सौ वर्षीय एजेंडा पेश किया। यह सच है कि दोनों देशों के बीच व्यापार घाटे से लेकर सीमा विवाद तक तमाम तरह के मतभेद हैं, लेकिन अगर हम अपनी सभ्यतागत बुद्धिमता से मार्गदर्शन लें और मित्रता को लेकर कोई पूर्वाग्रह न रखें तो हम पाकिस्तान सहित सभी देशों के साथ अपने मसले इस तरह सुलझा सकते हैं जिसमें किसी भी पक्ष को कोई नुकसान न हो। वास्तव में भारत और चीन मिलकर इस दुनिया को एक बेहतर जगह बना सकते हैं।

(लेखक फोरम फॉर ए न्यू साउथ एशिया के संस्थापक हैं)

response@jagran.com

बदले की भावना से उपजे आरोप

क्षमा शर्मा

वर्षों तक लिव इन में रहने के बाद जब संबंध टूट जाएं तो दुष्कर्म का आरोप लगाना बदले की भावना को ही इंगित करता है

अदालतें एक अरसे से इस तरह के फैसले दे रही हैं कि लिव इन के तहत बना संबंध दुष्कर्म नहीं है, लेकिन सरकारें इस तरफ ध्यान नहीं दे रहीं। परिणामस्वरूप लिव इन संबंध टूटने के बाद दुष्कर्म के झूठे आरोपों के मामले सामने आ रहे हैं। यह तब है जब सुप्रीम कोर्ट कह चुका है कि यदि सहमति से संबंध बने हों और आदमी उन परिस्थितियों के कारण विवाह न कर पाया हो, जिन पर उसका वश नहीं तो उसे दुष्कर्म नहीं माना जा सकता। यह फैसला न्यायालय ने महाराष्ट्र के एक डॉक्टर और नर्स के मामले में दिया। न्यायालय ने यह भी कहा कि सहमति से बने संबंधों को दुष्कर्म की धारा के अंतर्गत अपराध नहीं माना जा सकता। इस मामले में नर्स और डॉक्टर इकट्ठे रहते थे, लेकिन जब नर्स को पता चला कि उसकी शादी किसी और से हो गई है तो उसने दुष्कर्म की शिकायत कर दी। डॉक्टर ने मुंबई हाईकोर्ट से अपील की कि उसके खिलाफ एफआइआर रद की जाए, मगर हाईकोर्ट ने इसे नहीं माना था। तब उसने सुप्रीम कोर्ट से गुहार लगाई। कोर्ट ने एफआइआर को निरस्त करते हुए कहा कि अदालतों को काफी सावधानी से इन मामलों की जांच करनी चाहिए कि वास्तव में आरोपी ने वासना के वशीभूत होकर महिला से संबंध बनाए या संबंध सहमति के आधार पर बने? यदि दोनों में सहमति से संबंध थे तो संबंध टूटने पर दुष्कर्म का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

एक अन्य मामले में महिला पहले जिस पुरुष के साथ रिश्ते में थी उसने किसी और से विवाह कर लिया, लेकिन शादी जल्दी ही टूट गई। महिला फिर से पहले वाले साथी के संपर्क में आई। इस रिश्ते से एक बच्ची भी हुई, लेकिन महिला ने इस आदमी पर दुष्कर्म का आरोप लगा दिया। इसकी जांच करते हुए कोर्ट ने कहा कि ये संबंध पूरी तरह से स्त्री-पुरुष की मर्जी से बने थे। इन्हें दुष्कर्म नहीं कहा जा सकता। हाल में सुप्रीम कोर्ट ने फिर एक मामले में ऐसा ही फैसला दिया कि किन्हीं कारणों से शादी न हो पाने पर दुष्कर्म का आरोप नहीं लगाया जा सकता। जो जोड़ा वर्षों से साथ रहा हो, एक साथ घूमा-फिरा हो, पुरुष द्वारा शादी में असमर्थता व्यक्त करने पर भी सभी तरह के संबंध बने रहे हों तो ऐसे में इसे दुष्कर्म कहना उचित नहीं है।

वर्षों तक लिव इन में रहने के बाद जब संबंध टूट जाएं तो दुष्कर्म का आरोप लगाना बदले की भावना को इंगित करता है। हालांकि आज भी इस तरह के संबंधों को समाज में स्वीकृति प्राप्त नहीं है। जैसे ही लड़की या लड़के के घर वालों को इस तरह के संबंधों का पता चलता है तो वे उन्हें खत्म करने का दबाव बनाने लगते हैं। लड़के, लड़कियों की शादी कहीं और तय कर दी जाती है। दरअसल वक्त के साथ हमारी सोच भी बदली है। आज बड़ी संख्या में लड़के, लड़कियां घर से बाहर काम करने निकली हैं। इनमें से कई घर से बाहर कोई सहारा भी ढूंढ लेते हैं। एक तरफ हमें हर तरह की यौन आजादी चाहिए, रिश्ता चाहिए, मगर किसी तरह की जिम्मेदारी नहीं चाहिए। यदि यौन आजादी चाहिए तो रिश्ते के खत्म हो जाने पर दुष्कर्म का आरोप क्यों लगाना चाहिए? आपसी सहमति का तो अर्थ भी यही है कि किसी रिश्ते को दूसरे पर लादा नहीं गया।

सहमति से संबंध और अपराध में फर्क होता है। दुष्कर्म अपराध है, सहमति नहीं। फिर यदि आप इस तरह के तमाम मामलों को देखें तो दो ही तरह के आरोप लगाए जाते हैं-एक आरोपी ने शादी का झांसा देकर ऐसा किया। और दूसरा यह कि आरोपी ने बुलाया, पेय में कुछ मिलाया, जब लड़की या महिला बेहोश हो गई तो ऐसा किया गया। आखिर ऐसा कैसे होता है कि पढ़ी-लिखी, समझदार महिलाएं किसी के झांसे में आ जाती हैं या कि कोई धोखे से उन्हें नशीला पेय पिला देता है। पुलिस की मानें तो अक्सर ऐसे आरोप झूठे होते हैं और सोच-समझकर लगाए जाते हैं। इस तरह के आरोपों और दुष्कर्म जैसे अपराध में कोई समानता नहीं। दुष्कर्म स्त्री के प्रति जोर-जबर्दस्ती किया गया बेहद गंभीर अपराध है, जबकि लिव इन संबंध टूट जाने के बाद प्रतिक्रिया में किसी को अपराधी ठहराने की कोशिश एक साजिश है। यह उन स्त्रियों का अपमान भी है जो बड़ी संख्या में इस तरह के अपराधों को झेलती हैं और बहुत बार साधनहीन होने के कारण पुलिस और कानून के दरवाजे तक नहीं पहुंच पातीं। लिव इन मामलों में अक्सर जब संबंध टूट जाते हैं तो निराश महिलाएं दुष्कर्म के आरोप लगा देती हैं। यह सिलसिला बंद होना चाहिए। कायदे से तो कानून में बदलाव होना चाहिए।

(लेखिका साहित्यकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

प्रसन्न जीवन

प्रसन्नता जीवन का अमूल्य उपहार है। सफलता एवं उपलब्धियां उसी के पास आती हैं जो प्रसन्न होते हैं। प्रसन्न रहने वाला व्यक्ति कोई भयंकर पाप नहीं कर सकता। जिस गुण के बिना 90 प्रतिशत व्यक्ति असफल रहते हैं वह गुण है प्रसन्न भाव। यह गुण न बाप बेटे को दे सकता है और न बेटा बाप को। यह तो अपनी कमाई का गुण है। प्रसन्नता से मतलब केवल शारीरिक हास्य से नहीं है। इसके लिए भीतरी पवित्रता जरूरी है। प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति में न भय होता है, न शिकायत और न विरोध। ऐसा विरल व्यक्ति हर ओर से सकारात्मकता बटोरता है।

जिस भी व्यक्ति ने महानता का वरण किया है, उसका रोम-रोम हंसता हुआ प्रतीत होगा। कण-कण उसी के हंसते हैं जिसने समता, सौहार्द और संतुलन का जीवन जीया है। प्रसन्नता जीने का अभ्यास है। कोई भी व्यक्ति अपनी पवित्रता किसी को नहीं दे सकता, किंतु प्रसन्नता दे सकता है। मुस्कुराता हुआ फूल किसका मन नहीं मोहता। प्रसन्न व्यक्ति के प्रकंपन सुखद होते हैं। उनसे मन का भार हल्का होता है। तात्पर्य यही है कि मैं हंसता हूं तो सारा संसार हंसता हुआ प्रतीत होता है। यहां तक मृत शरीर भी उसे हंसता-खिलता दिखाई देता है, क्योंकि देखने वालों का नजरिया चैतन्य भरा है। इसी गुण से तनाव मुक्त जीवन जीया जा सकता है, लिहाजा इस विश्वास को स्वयं में संजोएं। थॉमस एल्वा एडिसन ने ठीक कहा है कि मनुष्य कम से कम इतना बुद्धिमान न हो जाए कि वह हंसने जैसी महान खुशी से वंचित रह जाए।

प्रसन्नता व्यक्ति की कार्यक्षमताओं का विकास करती है और वह कर्म के साथ स्फूर्ति और संतुलन बनाए रखती है। थकान मिटाने का एक बहुत बड़ा उपाय है प्रसन्नता। यह गुण व्यक्ति के खालीपन को भरकर उसके व्यक्तित्व को तरोताजा बना देता है। उसकी योग्यता को बढ़ाता है। उत्तेजना, शोक, बुरे विचार तथा नकारात्मक दृष्टियों से बचाकर व्यक्ति को सहज शांति से भर देता है। इसलिए प्रसन्नता जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

ललित गर्ग

तथ्य-कथ्य | स्कूली शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक

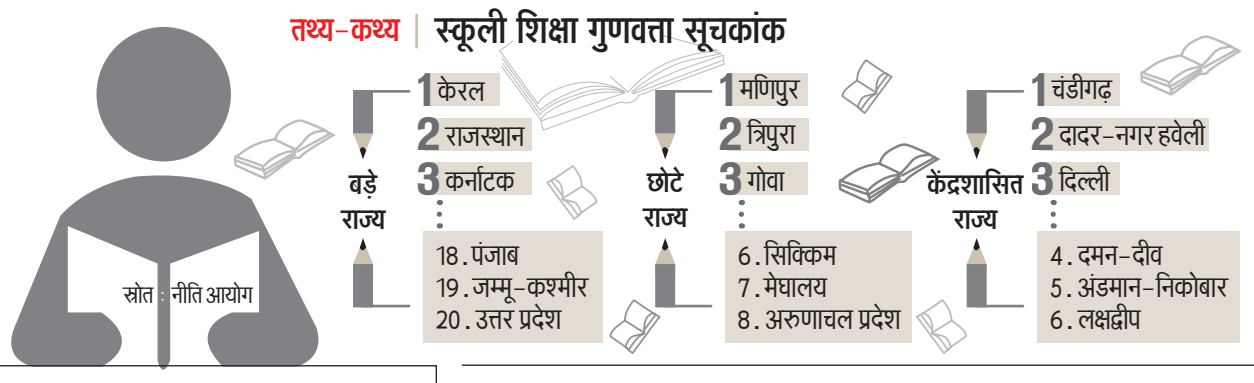

छोटे परदे पर बड़ी शिकायत

मनीषा सिंह

सरकार सोशल मीडिया पर नियंत्रण की व्यवस्था करती नजर आती है, लेकिन टीवी कार्यक्रमों का स्तर सुनिश्चित नहीं कर रही

बिग बॉस सीजन 13 के कई दृश्यों एवं संवादों के खिलाफ एक लिखित शिकायत सूचना और प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर से की गई है, जिसमें इस कार्यक्रम में अश्लीलता और फूहड़ता परोसने का आरोप लगाते हुए शो को बंद कराने की मांग की गई है। साथ ही मांग की गई है कि फिल्मों की तरह टीवी के कार्यक्रमों पर अंकुश के लिए अलग से सेंसरबोर्ड बनाया जाए। अब तो मोबाइल पर वेब सीरीज दिखाने वाले इतने मंच देश में बन गए हैं और उन पर बिग बॉस को टक्कर देती या उससे भी दो हाथ आगे की अश्लीलता परोसी जा रही है। ऐसे सभी कार्यक्रमों के निर्माता प्रायः यह दलील देते हैं ऐसे कार्यक्रमों की अवधारणा ही लोगों के निजी जीवन में ताकझांक पर आधारित होती है। हालांकि ऐसे मामलों में एक आश्चर्य तब जगता है जब हमारा समाज कुछ ऐतिहासिक फिल्मों के कुछ दृश्यों, तथ्यों, संवादों को बिना देखे-सुने ही उन पर आपत्ति जता सकता है, वही समाज बिग बॉस में दिखाई-सुनाई जा रही बातों-दृश्यों पर चुप्पी क्यों ओढ़ लेता है।

इस समस्या का एक पहलू और है। देश में फिल्मों की सामग्री के नियमन की व्यवस्था तो सेंसर बोर्ड के रूप में बनी हुई है, लेकिन टीवी और मोबाइल इंटरनेट पर परोसी जाने वाली सामग्री आपत्तिजनक होने के बावजूद लोगों को झेलनी पड़ती है, क्योंकि वे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होने के कारण बेबस हैं। गौरतलब है कि हमारे देश में अरसे से यह मांग होती रही है कि टीवी और मोबाइल इंटरनेट पर परोसी जा रही सामग्री के नियमन के लिए भी एक सेंसरबोर्ड होना चाहिए, लेकिन अब तक यह नहीं हो सका है। इसकी जगह टीवी कार्यक्रमों के खिलाफ शिकायत सुनने की एक व्यवस्था ब्रॉडकॉस्टिंग कंटेंट कंप्लेंट काउंसिल (बीसीसीसी) अवश्य बनी हुई है, लेकिन जानकारी के अभाव में इस पर कम लोग ही शिकायत दर्ज कराते रहे हैं।

ऐसे समाज में, जहां टीवी हर आयु वर्ग के लोगों में एक राय बनाने की हैसियत रखता है, यह जरूरी है कि धारावाहिक निर्माताओं को मनोरंजन के नाम अनुचित तर्कों के साथ स्तरहीन कार्यक्रम बनाने और दिखाने से रोका जाए। टीवी कार्यक्रम बनाने वाले निर्माताओं को भी समझना होगा कि टीवी से जुड़े होने के कारण उनका एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दायित्व है और वे इससे विमुख नहीं हो सकते। यदि वे इससे संबंधित नीतियां बनाकर खुद ही उनका पालन सुनिश्चित कर लेते हैं तो अच्छा होगा। अन्यथा उनके खिलाफ भी एक आंदोलन की जरूरत बनती है, खामोशी की नहीं।

यह तो अब पूछा ही जाना चाहिए कि जिस छोटे परदे ने देश के मध्यवर्गीय जनमानस पर एक तरह का कब्जा कर रखा है, क्या उसे नियंत्रण-मुक्त छोड़ा जा सकता है? यह हैरानी की ही बात है कि हमारी सरकार फिल्मों से लेकर सोशल मीडिया तक पर नियंत्रण की व्यवस्था करती नजर आती है, लेकिन टीवी कार्यक्रमों का स्तर सुनिश्चित करने वाला असरदार तंत्र उसने विकसित नहीं किया है। आखिर क्या वजह है कि टेलीविजन इंडस्ट्री को इस मामले में लगभग खुला ही छोड़ा गया है।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार है)

मेलबाक्स

जनसंख्या विस्फोट है गरीबी का कारण

गरीबों का जीवन बदलने वाले प्रयोग शीर्षक से लिखे अपने लेख में विवेक कौल ने हाल ही में अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अभिजीत बनर्जी के गरीबों की गरीबी समझने के लिए किए गए प्रयोगों का विश्लेषण किया है। हमारे देश में गरीबों का जीवन तब तक नहीं बदला जा सकता अर्थात इनको गरीबी के दलदल से तब तक बाहर नहीं निकाला जा सकता, जब तक इनको परिवार नियोजन के प्रति जागरूक नहीं किया जाता और इनके लिए बनाई गईं सरकारी योजनाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार का अंत नहीं हो जाता। अगर देश में इतनी जनसंख्या नहीं होती तो कोई भूखे पेट न सोता, बच्चे कुपोषण का शिकार होकर दम न तोड़ते और न ही कोई बच्चा पेट की आग बुझाने के लिए बोरी उठाकर कूड़े के ढेर तक जाता, बल्कि वह पढ़ने के लिए स्कूल जाता। आज भी कई लोग अपनी कमाई बढ़ाने के चक्कर में ज्यादा बच्चे पैदा कर रहे हैं, लेकिन इससे उनकी कमाई तो बढ़ नहीं रही, उलटे वे गरीबी के दलदल में और फंसते जा रहे हैं। जाहिर है गरीबी पर नकेल कसने के लिए जनसंख्या वृद्धि की बढ़ती रफ्तार को रोकना भी जरूरी है। इसके अलावा अक्सर देखा जाता है कि दिल्ली में जो गरीबों के लिए योजनाएं बनती हैं, वे भ्रष्टाचार के कारण देश के दूरदराज के गांवों-शहरों तक पहुंचते-पहुंचते रास्ते में दम तोड़ जाती हैं। गरीब उनका लाभ लेने से वंचित रह जाते हैं। यदि सरकार देश से गरीबी दूर करना चाहती है तो उसे इन दोनों मुद्दों पर ध्यान देना होगा।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

अलसी और इसका तेल

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने प्रायः हमारे खेतों में उगाई जाने वाली अलसी की एक नई उन्नत प्रजाति टीएल-99 को सफलतापूर्वक विकसित किया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें परंपरागत उगाई जाने वाले अलसी के तेल में पाए जाने वाले 35 से 67 प्रतिशत तक लिनोलेनिक एसिड की तुलना में मात्र 5 प्रतिशत लिनोलेनिक एसिड है। लिनोलेनिक एसिड की अधिकता की वजह से पुरानी परंपरागत अलसी का तेल बहुत जल्दी ऑक्सीडाइज्ड होकर खराब हो जाता था, अब इस नई अलसी की प्रजाति के विकसित होने से इसके तेल को बड़े आराम से अधिक समयावधि तक प्रयोग कर सकते हैं। इस तेल में वे सभी गुण हैं जो जैतून के तेल में होते हैं। इस तेल में हृदय रोगियों के लिए सबसे घातक तत्व संतृप्त और असंतृप्त वसा अम्ल बिल्कुल नहीं हैं, ऐसा बताया गया है। अलसी के तेल में 50 से 60 प्रतिशत तक ओमेगा-3 फैटी एसिड या अल्फा लिनोनिन एसिड और लिग्नान होते हैं, जो हृदय की बीमारियों को कम कर देते हैं। इसमें उपस्थित तत्व मानव शरीर में इंसुलिन उत्पादन को बढ़ाने को उत्प्रेरित करता है, जिससे डायबिटीज मरीजों के लिए भी यह रामबाण औषधि कारगर सिद्ध होगी। आशा की जानी चाहिए कि भारतीय वैज्ञानिक अपनी उच्चतम मेधाशक्ति से अलसी के तेल में उत्तरोत्तर सुधार करके भारत में इसे ऑलिव ऑयल जो बहुत मंहगा होने की वजह से आम भारतीय लोगों की पहुंच से बाहर है, का विकल्प प्रस्तुत कर भारत में महामारी की तरह अपना पैर पसारते जा रहे हृदय रोगों और शुगर रोग की रोकथाम में अपनी अहम भूमिका निभाएंगे ।

निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद

सशक्त विपक्ष जरूरी

दैनिक जागरण के 17 अक्टूबर के अंक में प्रदीप सिंह का लेख, प्रभावी विपक्ष में बाधा बनी कांग्रेस, में परिवार को बाड़ व कांग्रेस को खेत की संज्ञा दी है। इसमें आकलन किया है कि जब बाड़ ही खेत को खाने लगे तो क्या किया जा सकता है। असल में आजादी के बाद कांग्रेस पर नेहरू गांधी परिवार का ही वर्चस्व रहा है। सोनिया गांधी निरंतर 17 साल तक अध्यक्ष पद पर बनी रहीं। सोनिया के बाद राहुल गांधी आए, किंतु वे भी पार्टी को अधर में छोड़कर चलते बने। कांग्रेस के पास परिवार से इतर नया अध्यक्ष चुनने का अवसर था, किंतु कांग्रेस परिवार के मोहपाश से नहीं छूट सकी। संभवतः कांग्रेस को यह भय सता रहा होगा कि यदि नेहरू गांधी परिवार से बाहर अध्यक्ष पद गया तो कांग्रेस बिखर जाएगी। कांग्रेस ने 1984 के लोकसभा चुनाव में चार सौ से ज्यादा सीटें जीती थीं, लेकिन अब बहुत कमजोर हो गई है, वहीं भाजपा के पास अपार बहुमत है। ऐसे में सत्ता में बैठी कोई भी पार्टी निरंकुश हो सकती है। इसलिए एक सशक्त विपक्ष का होना अनिवार्य है।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।

WORDLY WISE

I TRAMP A PERPETUAL JOURNEY.

— WALT WHITMAN

The Indian EXPRESS

FOUNDED BY

RAMNATH GOENKA

BECAUSE THE TRUTH INVOLVES US ALL

SHUT OUT THE NOISE

Public spats on slowdown could dampen investor sentiment, government should focus on reforms to revive the economy

IN AN ERA of global convergence, it is hardly surprising if the government's response to criticism of its handling of the economy appears to reflect a template. The blame-game regarding the state of the economy, featuring Union finance minister, Nirmala Sitharaman, and former prime minister, Manmohan Singh, in some ways mirrors the scenario in the US, where President Donald Trump has blamed not just the US Federal Reserve and its chairman, Jay Powell, but also the Democrats for trying to will the economy to be bad before the election next year. The backdrop to this is the release of indicators that has fuelled concerns about a slowdown. With multiple economic indicators showing that the slowdown is deepening, a fact confirmed by the International Monetary Fund and the Reserve Bank of India, which have sharply revised the growth rate for FY20 downwards, criticism by economists and others seem to have rankled the government further.

At an event in the US, Nirmala Sitharaman said India's state-owned banks had their worst phase when Singh was the prime minister and Raghuram Rajan the RBI governor. That seemed to have provoked Singh to retort that unable to find a solution to revive the economy, the Narendra Modi government was blaming the UPA. It is true that the roots of the banking sector can be traced to the second term of the UPA government, which was marked by several scams. The voters recognised that by punishing them in the last two elections. Blaming another messenger of bad news — Rajan — too seems strange. It was during Rajan's tenure that the process to clean up the banking system through the Asset Quality Review was initiated. The voters, who have rewarded the NDA with a second term, expect that it would put the economy back on track. It is unfortunate that instead of shutting out the noise, the government is getting distracted by criticism, especially at a time it has indicated a willingness to course correct, as reflected in the corporate tax cuts and other changes, and thereby rekindling investor interest. The biggest risk in these public exchanges is a further erosion of faith that can dampen investment.

The Modi government cannot, and should not, squander its second term by reacting to such criticism. Rather, stepping the gas on a range of reforms and hunkering down as these changes play out over the next couple of years, and at a time when conventional monetary and fiscal policy tools look inadequate globally, should top the government's agenda.

JOURNEY INTO FUTURE

Civilian flights out of Jaffna are symbolic of the distance Sri Lanka has travelled from war to peace

FROM THE TINY Palaly military airfield where Indian Air Force transporters landed troops of the Indian Peace Keep Force in the 1980s on a mission whose failure was foretold, and where later, an extremely fragile Sri Lankan Air Force landed Sri Lankan troops to recapture Jaffna peninsula from the Liberation Tigers of Tamil Eelam, taking back dead and wounded soldiers along with those going home on leave, to the shiny new Jaffna International Airport from where civilians will arrive and depart, this transformation has been a long journey in many ways. It is symbolic of the distance Sri Lanka has travelled from war to peace.

Ten years after the war ended, the airport at Palaly will now connect Jaffna to many places in the world. Through the war years, the Tamil diaspora spread widely across the globe, but the only airport to fly out from all this time was Colombo. The Chinese-built road through the heart of northern Sri Lanka has eased the road journey from the peninsula to the capital city, and the Jaffna-Colombo train service has been back for five years. But for many years, the distance between the two cities to catch a flight was not just long, but filled with the hazards of multiple checkpoints, where packing and unpacking suitcases was considered only the most minor of misfortunes that could befall a traveller, and of having to stay overnight in Colombo lodges that could be raided anytime on suspicion that LTTE members were sheltering there. The first civilian flight to land there was from Tamil Nadu. It carried the weight of the long chequered history of India-Sri Lanka relations, more specifically, the special place the southern state has occupied in this from times immemorial.

That bilateral relations have changed to a point where Sri Lanka is confident enough to permit transport links between the Tamil-speaking north and Tamil Nadu tells its own story. Sinhalese Buddhism lives in the atavistic fear of an invasion from the north, and the sides taken by Tamil Nadu political parties in the civil war fuelled such fears. Sri Lanka turned down Indian financial assistance to redevelop the airport, but the air link will help boost trade, both formal and informal, and travel. Not long ago, Prime Minister Ranil Wickremesinghe wanted to build a bridge connecting Sri Lanka and India, to bring the island country closer to mainland South Asia. Jaffna International Airport could be that bridge.

I, ME, MYSELF

Trump elects to host a G7 summit at his own golf club, at state expense. For him, it's par for the course

DONALD TRUMP'S STYLE is to make the political personal. And in his case, the personal means business. Properties like the Gleneagles Hotel and the Schloss Elmau, where the G7/G8 have earlier resorted to, have yielded ground to the rather unsung Trump National Doral in Florida. In the midst of an impeachment inquiry, Donald Trump is yet again testing the limits of presidential impropriety by promising to hold the 2020 G7 summit on his own property. And once more, perhaps, he will find those limits to be quite springy and giving, though the Democrats have already raised an outcry about corruption.

The Doral golf club is said to be the least financially viable property in the Trump empire. It has never hosted anything bigger than a Republican convention, but the president insists that it has what it takes. Security for so many heads of state could be problematic, too, because while Trump suggests that its proximity to an international airport is a convenience, a sudden deviation in the flight path of a landing flight can give the troopers the willies. It happened on 9/11, with the plane that targeted the Pentagon.

Past US presidents have always been careful to keep their public and private affairs separate, to preempt accusations of illicit benefit. But Trump believes that when you tee off, it's fine to do stuff that isn't quite cricket. If anyone protests, just do it again. When he was accused of crossing a line in a call to Kiev, he just did the same thing publicly in a communication to Beijing. Now, White House chief of staff Mick Mulvane says that Trump knows of "folks who will never get over the fact that it's a Trump property". But he will persist. Because in the end, he knows, it'll be great.

Crunch time for secularism

Congress ambivalence has allowed BJP to walk away with liberal agendas

PRATAP BHANU MEHTA

THE NEXT FEW months may turn out to be crunch time for the institutional formation of Indian secularism. The Ayodhya judgment is expected. The government is also likely going to move on three other issues that go to the core of secularism: The Citizenship Amendment Act (CAB) and the possible extension of the National Register of Citizens (NRC) itself; the introduction of a Common Civil Code Bill; and a possible national legislation to regulate conversion. These issues have been simmering for 70 years, and one way or the other a dénouement looks likely now. But the monumental irony of the moment is these issues are also a reminder that the Congress's cardinal sin was not letting the BJP walk away with nationalism; it was letting BJP walk away with liberalism.

Since Independence, the Congress dealt with these issues as a kind of modus vivendi, relying on deferring them issue, or fudging along with messy compromises that were often unprincipled. Both Rajiv Gandhi and Narasimha Rao did that on Ayodhya by facilitating access to the site and laying the ground work for a criminal act of destruction that took place with the demolition of Babri Masjid. They also, in effect, conceded the legitimacy of the principle that any wrong that might have been committed in the 16th century needs to be rectified in the 21st and that the importance of Ram requires worship on that site.

Ram bhakti requires no such diminution of Ram. The Left also unwittingly played into the BJP's hands, by constructing a historiography that denied or underplayed the fact that temples might have been destroyed. Both, in a sense, were arguing on the same ground that current rights depend on ascertaining the facts somewhere around circa 1526. Depending on the way the judgment goes, the biggest danger of the Supreme Court order will be to create a precedent that a large number of current titles to sites, from Mathura to Kashi now depend on arcane historiography. As you can see from the gathering momentum, this is a recipe for a nation in permanent contest over monuments of the past, and permanently in the grip of communal tension. The Congress closed the path to the future, it did not uphold rule of law, and legitimised the idea that Ram bhakti requires a temple on that site.

> Depending on the way the judgment goes, the biggest danger of the Supreme Court order will be to create a precedent that a large number of current titles to sites, from Mathura to Kashi now depend on arcane historiography. As you can see from the gathering momentum, this is a recipe for a nation in permanent contest over monuments of the past, and permanently in the grip of communal tension.

Similarly on the Uniform Civil Code (UCC), the Congress crafted a modus vivendi at Independence. Its shameful abdication on Shah Bano gave the BJP the political opening. What variation in civil codes is possible in a manner compatible with the freedom and equality of persons is an intricate philosophical issue. But from a liberal democratic standpoint, any civil code would have to pass three tests: Reflect freedom and equality, especially on gender; acknowledge that Parliament has symmetric authority over the laws of all religions; and that common citizenship requires we all be able to speak on each other's laws that are upheld by the state in our name. There are tricky issues. There is a false communal discourse that paints majority's laws as practices uniquely progressive and minority laws as regressive. There is the vital question of who gets to set the content of the UCC, the principles that guide it, and what variations it should allow to respect diversity. There is a real risk that our current answers to these questions will have not just a majoritarian slant, but will be designed to humiliate minorities. But in public eyes, all that the Congress offered was an evasive status quo. It let the BJP formally walk away with the plank of gender justice and the liberal idea that rights should, as far as possible, not depend on membership in particular religious communities.

On conversion, again, the Congress wrote the playbook in states including Madhya Pradesh and Odisha. Whatever may be the theological pros and cons of conversion, the idea that the state is in the business of saving anyone's soul should be an abomination for liberals. Yes, it has no right to intervene even if someone converts for inducement: That someone sells their soul, out of necessity or convenience, is their business. Often the legislation was one sided: Coming "back" to Hinduism is not conversion, but exiting is. The entire conversion discourse is built around the insecurities of Hinduism. We were complacent because we could always count on Congress governments not to enforce their own laws. But the idea of the state having any role in regulating religious beliefs should be anathema. But the Congress wrote the playbook.

The NRC process, as it is turning out, is an abomination; a recipe for human rights violations and the creation of insecurity all around. Formally, of course, every state can claim the legal right to want to distinguish between legal and illegal immigration. In Assam, there was a political issue about apportioning power between religious and cultural communities. The CAB is one discriminatory response to that quagmire. But instead of finding creative solutions consistent with practical realities, non-discriminatory constitutional ideals and humane values, all parties are now engaged in whipping up anxieties, whose logical conclusion will be more power to the state to harass ordinary citizens, especially minorities. We are risking consigning hundreds of thousands of people to that institution that is the 20th century's most ominous symbol of oppression, the camp. The NRC will add another dimension to the politics of secularism.

In the aftermath of Partition, creating a modus vivendi that threw cold water on these issues was understandable. But the Congress not only refused to move on and think anew; it has never adequately distanced itself from its mistakes and betrayals. It cannot articulate a position that is both progressive and anti-majoritarian. Instead, it will go for status quo and soft majoritarianism. On many of these issues, particularly on UCC, there has been a lot of sophisticated thinking. But the Congress's tainted record drowns out all other positions. Amit Shah will stand up and announce that the BJP is realising all the dreams the Congress did not have the courage to fulfil. The Congress will again be like a deer caught in headlights. What will it say? It will draw the erroneous conclusion that it lost credibility because it was soft on nationalism. No, it lost credibility because it betrayed liberalism. In this crunch moment for Indian secularism, which will be a crucial test for the Opposition, the Congress will be the cross we all have to bear. Fighting for secularism against the BJP is hard enough; being tarred with the legacy of Congress makes it even harder.

The writer is contributing editor, The Indian Express

A DOOMED ELECTION

Afghanistan polls, held without a ceasefire, do not portend political stability

KHALED AHMED

WARLORD GULBUDDIN Hekmatyar, who stood for president in the September 2019 elections in Afghanistan, announced post-poll that his rival, incumbent President Ashraf Ghani's votes were "over 60 per cent bogus", but he, Hekmatyar, had won the election anyway. The Tajik "chief executive" Abdullah Abdullah too announced that he had won the election.

A total of 2.7 million Afghans or 28 percent of the registered voters voted in the elections. An election, held without a ceasefire with the Taliban and its allies, the al Qaeda and Islamic State, was foredoomed. The trio held almost half of the "voting" Afghanistan.

In June 2019, Ghani visited Pakistan to say that its past "interference" in Afghanistan through the Taliban Quetta Shura had disturbed the bilateral equation which he hoped to set right. Later, Hekmatyar declared that Ghani was going to harm Pakistan by helping Iran and India to scuttle Pakistan's policy in Afghanistan and the region.

That Hekmatyar "negotiated" his return to Afghanistan, after a decade of war, did not mean that he was on the side of the Kabul government fighting the Taliban, al Qaeda and IS. It did not matter that he moved back because he couldn't get along with the Afghan Taliban leaders who once lived together with him in Peshawar in Pakistan during the war against the Soviet Union (1979-1989). He had begun by being a favourite of the US and ended up being its enemy, just as he began by being lionised by Pakistan but found Pakistan too "subservient" to the US. His view, however, surreptitiously resonated with many within the deep state of Pakistan.

> Pakistan inherited a split Afghan policy because of Hekmatyar's vendetta against the Tajik warlord Ahmad Shah Massoud. It meant that Pakistan had to say goodbye to the non-Pashtun tribes of northern Afghanistan, thus creating space for India to step in and balance the war in Pakistan's backyard. Pakistan's pursuit of a 'Hekmatyar policy' did not endear it to the Pashtuns of Afghanistan either.

His latest "revelation" was that Iran was in cahoots with India to harm Pakistan. Hounded by the rival Afghan warlords, he had "requested" Iran to give him shelter in 1996 — only to be driven out of there in 2002. After the Taliban under Mullah Umar fell from power in 2001, he returned to Pakistan to "resist" the government of President Hamid Karzai in Kabul.

To retrieve the details of his peace deal with Kabul, let's examine the facts more closely. On September 21, 2016, Ghani signed a peace deal with Hekmatyar and his Hizb-e-Islami militia. Before the deal, Hekmatyar apologised for bombing Kabul in 1993-94. He wanted to do this routine with Karzai too, but in those days the Americans didn't like the idea — they had placed a bounty on him. They knew that, starting 1996, he had lived in Tehran for seven years after apologising for having kicked the pro-Iran Shia militias out of the post- Soviet withdrawal mujahideen shura of Peshawar. He had Pakistan's ISI chief General Hamid Gul propping him up as Afghanistan's new prime minister.

Pakistan inherited a split Afghan policy because of Hekmatyar's vendetta against the Tajik warlord Ahmad Shah Massoud. It meant that Pakistan had to say goodbye to the non-Pashtun tribes of northern Afghanistan, thus creating space for India to step in and balance the war in Pakistan's backyard. Pakistan's pursuit of a "Hekmatyar policy" did not endear it to the Pashtuns of Afghanistan either. After the fall of the Soviet-backed regime in Kabul, Hekmatyar was chosen as prime minister of the new set-up; but he was not allowed to sit on the Kabul throne by his enemy Massoud's militia that had "symbolically" bombed Pakistan's embassy in Kabul to signal its opposition.

Hekmatyar sat instead on a hill outside Kabul and bombed the daylights of the capital city. He had more ammunition than all the Pakistan-supported warlords put together. Efforts to persuade Hekmatyar to reconcile with the Kabul government failed despite Osama Bin Laden's urging "to compromise with Ahmad Shah Massoud" in a radio conversation from Peshawar a year earlier in 1991: "Go back with your brothers," Bin Laden had stated. Instead, in 1992, Hekmatyar persuaded Uzbek leader Abdul Rashid Dostum and his Hazara Jihadi faction Hizb-e-Wahdat to form a common front against the Kabul government.

The writer is consulting editor, Newsweek Pakistan

OCTOBER 19, 1979, FORTY YEARS AGO

INDIAN EXPRESS

PRESS RESTRICTIONS

THE UNION INDUSTRY ministry issued an office circular barring its officials from meeting the press. This has come as a sequel to recent news reports on industrial policy which piqued Prime Minister Charan Singh. The circular, issued under instructions from the PM, says that any unauthorised briefing of newsmen would be treated as a serious violation of the service conduct rules and would invite stringent disciplinary action. It makes it clear that only the minister, the secretary and those officials specifically authorised to speak on behalf of the ministry would meet the press — in the normal course, journalists would be briefed by officials of the Press Information Bureau, it is said.

LITERATURE NOBEL

THE NOBEL PRIZE in literature was awarded to Greek poet Odysseus Elytis, whose lyrical work portrays man's struggles against the background of the Aegean landscape and Greek tradition. Elytis is the second Greek poet to receive the award — Giorgos Seferis won it in 1963. Elytis is the pen name adopted by Odysseus Alepoudhelis. In the mid-1930s, he and Seferis were among the contributors to the literary magazine *Nea Grammata*. Most of the members of this lyrial school were influenced by surrealism.

TARAPUR FUEL

THE EXTERNAL AFFAIRS minister, S N Mishra, said there was "no room for pessimism" on the question of the US continuing supply of nuclear fuel for the Tarapur atomic power station. But did this mean there was room for optimism, he was asked at a news conference following his return from New York. Also, did the minister return with the impression that the US would clear the consignment for 19.8 tonnes of enriched uranium before the elections? Mishra replied: "There is no room for pessimism — I am not prepared to say anything more". When told of "pessimistic" newspaper reports on the subject, he described them as "tendentious".

WHAT THE OTHERS SAY

"Demonstrations in Catalonia used to be peaceful. It seems that the protesters' use of violence in the four-month turmoil in Hong Kong has set an example for Catalan radicals."

—GLOBAL TIMES, CHINA

The end game

Boris Johnson's Brexit troubles are not over. He has to bring the deal to the House of Commons, persuade Parliament to support it

MEGHNAD DESAI

C R Sasikumar

AGAINST ALL ODDS and despite all the rude remarks about EU leaders, Boris Johnson, the British prime minister, has struck a "deal" on the United Kingdom's exit from the European Union, well in time before the October 31 deadline. It looked highly unlikely just three months ago when Johnson became prime minister in July and promised to exit by October 31, deal or no deal or die in the ditch in the process.

Johnson hasn't had much luck with the British House of Commons since he became prime minister and suffered serial defeats. He managed to antagonise the Opposition and even his own party when he expelled 21 MPs who had voted against him. As such, he had inherited a party with no majority and the expulsions and other departures reduced his numbers in Parliament. He prorogued Parliament three weeks ahead of schedule which was appealed against in the courts. The Supreme Court declared it illegal and ordered Parliament to be resumed.

His prorogation united the Opposition. In order to forestall a possible departure on October 31 without a deal, Parliament passed an act asking him to come back with a signed deal by October 19, the day after a summit meeting of the European Union, and the last day for getting an agreement signed by the EU and the UK before the October 31.

If he had failed, then in that case, he had to ask for an extension of the departure date. Just seven days ago it looked likely that Johnson will not succeed in getting a deal signed by October 19. But, he also threatened not to obey Parliament and ask for an extension in the departure date till January 31, 2020.

The principal obstacle to the deal was the "Irish Backstop". Northern Ireland is a devolved part of the UK which shares the island territory with the Republic of Ireland, from which it was partitioned a century ago. The republic is a member of the EU. If the UK was to exit the EU Customs Union, then any goods lorry going from Northern Ireland to the Republic would need to be inspected and would have to pay a tariff.

However, in 1998, a treaty was signed by the UK and the Republic, with the USA being the broker, declaring that the border between the north and the south would be free. Thus the departure of the UK from the EU would be impossible as customs inspection and a free border would be incompatible.

Theresa May had got a deal in which it was promised that the entire UK would stay in the customs union even after Brexit until the EU and the UK had negotiated a free trade treaty. This deal was rejected by the House of Commons four times. Northern Ireland rejected the option of being separately treated from the rest of UK for the purpose of the customs union.

Theresa May was asked to resign by her party and Boris Johnson was elected leader by the Conservative Party. He promised to exit by October 31 — deal or no deal. It looked like he preferred a no deal which would have brought all trade between the UK and the EU, especially between North Ireland and the Republic to a halt and cause severe damage to all economies.

In a meeting with the Irish Taoiseach (the prime minister) Leo Varadkar, Johnson made a breakthrough. It was proposed that Northern Ireland would remain in the single market (enforcing common standards of health and safety and environment in production of goods traded) which would avoid health inspection. As to customs union, Johnson proposed inspections not at any spot but electronically and at random locations. This was not enough, but provided ground for further negotiations. October 16 and 17 being the summit dates for the EU, day and night negotiations followed over the last weekend and well into this week.

The objections were formidable. Northern Ireland insisted on coming out with the rest of the UK from the EU. The compromise is that in law, all UK will exit together. But a free economic zone would be declared for Northern Ireland which will admit goods from mainland UK. These goods will be taxed if they go south to the Republic but not if they stay north. To ease the burden, all goods will be taxed as they cross the Irish sea but those staying within the north would be granted a rebate.

To ease trade between the north and south Ireland, as before, it is agreed that the rules of the common market would apply. But, to make it more effective, the UK has promised to obey common market regulations when it negotiates a free trade treaty with the EU.

> Johnson's troubles are not over yet. He has to bring the deal to the House of Commons which will meet on a Saturday for the first time in 40 years. He will have to persuade Parliament to support it. With reduced numbers, he has to take back his expelled colleagues, keep the Democratic Unionist Party (DUP) MPs supporting the deal and win over about 20 more votes from the Opposition benches. MPs who want Brexit but with a deal and not without may vote with Johnson.

Thus, the border between the EU and the UK is in the Irish Sea which was originally rejected by Northern Ireland. Now, that has been agreed on. Northern Ireland will, de jure, leave with Great Britain but, de facto, be a free economic zone permitting trade across the customs union.

Johnson's troubles are not over yet. He has to bring the deal to the House of Commons which will meet on a Saturday for the first time in 40 years. He will have to persuade Parliament to support it. With reduced numbers, he has to take back his expelled colleagues, keep the Democratic Unionist Party (DUP) MPs supporting the deal and win over about 20 more votes from the Opposition benches. MPs who want Brexit but with a deal may vote with Boris.

It has been a tense few days and the coming days will be even more so. I put the probability of success no more than 65 per cent. Johnson would be hailed as a great prime minister if he delivers a Brexit with a deal by October 31. If he wins, he will call for an election which he will win handsomely.

If he loses the vote, there may be a second referendum putting his deal to a vote or he may face a no-confidence vote. If he loses that vote, an interim government would take over, get an extension, and start negotiations all over again.

The writer is an economist and member, House of Lords, UK

Supreme protection

Higher judiciary must take proactive steps to stop lynching, punish perpetrators

DUSHYANT DAVE

ON JANUARY 1, Prime Minister Narendra Modi in an ANI interview spoke on lynchings: "Any such incident does not reflect well on a civilised society... This is totally wrong and condemnable... For improving this situation, we should all work collectively. There should be no such incident in the society." Later, in June, while speaking in Rajya Sabha, the PM again said, "The lynching (in Jharkhand) has pained me. It has saddened others, too".

The constitution bench of the Supreme Court of India in its judgment dated July 17, 2018 while dealing with W.P. (C) No. 754 of 2016 held, "There can be no shadow of doubt that the authorities which are conferred with the responsibility to maintain law and order in the States have the principal obligation to see that vigilantism, be it cow vigilantism or any other vigilantism of any perception, does not take place." It observed, "...When any core group with some kind of idea take the law into their own hands, it ushers in anarchy, chaos, disorder and, eventually, there is an emergence of a violent society". It also held, "Lynching is an affront to the rule of law and to the exalted values of the Constitution itself". The Court further held, "Hate crimes as a product of intolerance, ideological dominance and prejudice ought not to be tolerated; lest it results in a reign of terror..."

Therefore, the Court, while laying down various guidelines for the central and state governments — including preventive, ameliorative and punitive measures — directed the appointment of nodal officers by the police in each district of every state in this regard, observing, "... we think it appropriate to recommend to the legislature, that is, the Parliament, to create a separate offence for lynching and provide adequate punishment for the same..." to instill fear of law amongst perpetrators.

The judgment of the SC binds all civil and judicial authorities in the country by virtue of Article 144 of the Constitution. So, the October 4 order by the chief judicial magistrate of Muzaffarpur, Surya Kant Tiwari is, to say the least, worrisome in so far as he entertained a petition by a serial litigant, which had no basis whatsoever in the eyes of law, directing the police to register an FIR against 49 eminent citizens who had written a letter to the PM to intervene and stop lynchings. The petition claimed that by their letter, "they had tarnished the image of the country and undermined impressive achievements of the Prime Minister". The order passed by the CJM and the subsequent registration of the FIR are not just unconstitutional, but entirely illegal and perverse. The CJM surely ignored not just the rule of law but a binding judgment of the Supreme Court. Does the CJM suggest that even the PM can be proceeded against for his statements? The CJM, in this case, needs to be proceeded against by the concerned high court administratively for having abused his office. One hopes that the high court would intervene.

But, this incident brings to fore the role of the judiciary. Though the right to life is a Fundamental Right, which the state including the executive and judiciary is bound to protect, the violations in these types of cases go, more often than not, unpunished or under-punished. In a large number of cases of this kind, the judges, including those in the higher judiciary, have been extremely lenient towards the perpetrators. As a result, acquittals in virtually open-and-shut cases have come at regular intervals, as in the Pehlu Khan lynching case. The orders for granting bail by the Jharkhand High Court in the Ramgarh lynching case, by the Allahabad high court in Bulandshahr lynching case, by the Bombay High Court in Dhule lynching case, by the Punjab and Haryana High Court in Junaid lynching case, and, by the sessions court in Hapur lynching case, are some of the instances which raise serious question marks on the judicial approach of the courts in India towards such heinous crimes. The grant of bail to the convicted and accused in the Gujarat riot cases — where hundreds were killed in the Gulbarg Society massacre and the Naroda Patiya massacre — by the Supreme Court and the Gujarat High Court, add to this list of avoidable decisions. All this is compounded by the approach of the police in improperly investigating cases and not taking them to their logical end before the courts. Clearly, the judiciary needs to undergo extensive sensitisation programmes to deal with such matters.

Judicial apathy sends terribly wrong signals to future perpetrators, who may justifiably believe that they may ultimately be acquitted, and in any case will be bailed out pending trials. Far from instilling fear of law, such decisions remove that fear. The time has come for the SC and the high courts to take up such cases of acquittals/grant of bails suo motu, and pass appropriate orders after hearing concerned parties. The Supreme Court in its February 8, 2018 judgment — while setting aside the judgment of Bombay High Court granting bail to the accused who had killed one Shaikh Mohsin in Pune — observed: "We have no doubt that a court fully conscious of plural composition of the court while called upon to deal with rights of various communities cannot make such observations which may appear to be coloured/biased for/or against a community. that the fact the deceased belongs to a certain community cannot be a justification for any assault much less a murder."

This should be the approach of the entire judiciary, which is the ultimate protector of the Right to Life as guaranteed under Article 21 of the Constitution. One hopes that the SC takes definite steps in this direction.

The author is a senior advocate of the Supreme Court of India

The sacred economy

Today, more than ever, we need Gandhi's economic wisdom

PRASANNA

WE DEFINITELY need Gandhi. But the point is: How do we utilise his wisdom to sort out the mess we have created in the last seven decades? When you look at it this way, you realise that you have to take Gandhi's economic wisdom, rather than the many, many other things that he did. What is Gandhi's economic wisdom? J C Kumarappa called it "economy of permanence". But I call it "sacred economy" because Gandhi, in a fundamental sense, married the sacred and the economic, while all of us, in the last seven decades, have been separating the two.

We should realise that Gandhiji was a Rama bhakt. For him, political independence went along with constructing a Rama rajya or a civilisation that is decent. When he married politics and Rama rajya, he did so at the level of the economic. For Gandhiji, economy meant construction of jobs, more than production, more than profits. In the last 70 years, we have been increasing production only because it meant a lot of profit for a few people. We genuinely thought that those few people would transfer the profit to the masses. Jawaharlal Nehru tried seriously to achieve that, as did others. I am sure even our present PM is trying to achieve that. Unfortunately, this has not happened.

The economy of over-production and excess profit and growth is collapsing. Some may be wishfully thinking it will revive. But most sensible people think it won't. You can't simply go on constructing and we can't always have a 12 per cent growth — that can be achieved only by cancer, not by human beings. When Greta Thunberg is raising her voice, saying, "You people are destroying my world", she can only cry because the country and continent in which she lives, as well as America, have converted so completely to homogenised economic systems that they may be unable to go back. But as a proud Indian, I know that the other economy, which was dear to Gandhiji, is alive in India. So there is a possibility of going back to nature.

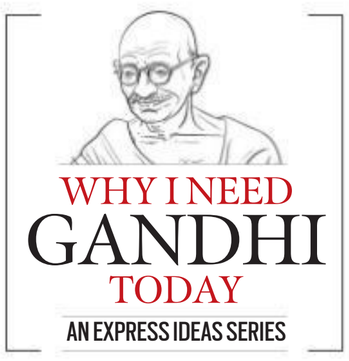

How can we achieve this? Only the way Gandhiji tried to achieve it. By marrying the best in city people with the best in village people. We don't realise that Gandhiji, though he donned the dress of a villager, was an urban mind. He had gone to England, South Africa, he knew many languages; he had, among his friends, socialists, communists and Catholics. He understood the world. And he was telling the young people of those days, whether it was Subhash Chandra Bose or Nehru or hundreds of other highly-educated city people, to go to villages. He was also asking the village people, too, to go to the city for inspiration.

Gandhiji's economy is sacred and also scientific. How do you save nature? By actually shifting to production systems that use less of automation, that treat nature as less of a raw material. When I talk of sacred economy, I don't only mean the handmade. A lot of people think that Gandhiji talked of the handmade in a Brahminical way — meaning only that and nothing else. A hundred years after Gandhiji, we cannot draw the line between the handmade and the machine-made. But we have to start the scale from the complete handmade, as the most sacred. A little less handmade is a little less sacred and so on.

The alternative needs time, it needs hundreds and thousands of what Gandhiji called constructive workers, who will go to the villages and arm them with systems. Over the last 250 years, millions of dollars have been spent in industry and the knowledge accumulated is in the construction of systems of accounting, of management, production, managing markets, managing production, etc. The villagers don't have it. Mr Tata has this. The weaver doesn't.

We should inspire thousands of young people, who are falling on the streetside every day because of job loss, inspire them to go to the village, and work like activists of the freedom struggle. Work like Kumarappa. He was an US-trained economist. He changed his dress, threw away his salary and happily worked amongst the people, improving the systems of production of handloom, oil, soap, etc. If we sit in our comfortable chairs and criticise others, the country will collapse. Gandhiji did not just talk. He acted.

We need the Gandhi who constructed an economic dream. And not just a political dream. When we look at Gandhi's dream as political, then we want to kill him. Because a lot of people are trying to convince you that Gandhiji sold out to Pakistan. That is ignorance.

I don't want to talk about politics. Because politics has become a choice between two parties, or pieces of a few parties. But essentially, it is the same economy. They talk about the village, they are for the city. They talk about the small, they enjoy the smart city. The people followed our PM because they thought he was talking of Rama Rajya, and they gave him a massive mandate. It was a positive mandate. To construct a Rama Rajya, which, we should realise, is ashrama rajya. When Rama fought his enemy, he had the monkeys and the birds and the trees as his soldiers. And what was he trying to save from the rakhshasa? Sita, who is nature. That's where our PM, though he is so popular and competent, has misread the message given by the people. That message was not for the mere construction of a Ram temple, but for the construction of a beautiful dream, which is Rama rajya.

Prasanna is a Kannada playwright and founder of Gram Seva Sangh. As told to Amrita Dutta

LETTERS TO THE EDITOR

DILUTING RTI

THIS REFERS TO the editorial, 'Chipping away RTI' (IE, October 18). It rightly notes that even before the introduction of the new amendments, governments have diluted the RTI Act through various means. But, the information commission is also responsible for this state of affairs. Here is an example: In the last 32 months, Gujarat Information Commission received 44,457 second appeals but it has admitted only 24,175 of them. The GIC heard 13,755 second appeals in the past 32 months but ordered compensation in only two cases and that too only Rs 10,000.

Suchak D Patel, *Ahmedabad*

LETTER OF THE WEEK

MANTO REDUX

THIS REFERS TO the article,This refers to the article, 'Where do I belong?' (IE, October 14). Obtaining a legal identity is so convoluted, so complex that if Saadat Hasan Manto was alive today, he would have found us all as flustered as his iconic character, Toba Tek Singh.

Sangeeta Kampani, *Mumbai*

CHIEF OF CHIEFS

THIS REFERS TO the article, 'Light on national security'(IE, October 17). The creation of the post of Chief of Defence staff is long overdue. This officer could be the government's chief military advisor as well as a leader of the chiefs of the services. Most countries have such a post. The CDS will not only coordinate the activities of the armed forces but also act as the link between the government and the armed forces.

Sauro Dasgupta, *Kolkata*

PATH TO NORMALCY

THIS REFERS TO the editorial, 'Erasing the slate' (IE, October 16). The editorial has hit the nail on the head with the respect to the situation in Jammu & Kashmir. The need of the hour is to bring back normalcy in J&K and restore the confidence of the people. However, anti-social elements should be dealt with an iron hand. Communication facilities should be restored. All sections of people including the opposition parties should aid the government's initiatives to restore normalcy.

V Nagendra Kumar, *via email*

A NON STARTER

THIS REFERS TO the article, 'Five years of Make in India' (IE, October 17).It has been more than five years since Prime Minister Narendra Modi invited entrepreneurs from all over the world to manufacture in India. But the response has not been enthusiastic so far. The reasons are not far to seek. Our bureaucratic dragnet discourages investors to park their money here. Cumbersome laws coupled with the scourge of corruption dissuades them from setting up enterprises. Unless the work climate improves, Make in India will remain an utopia.

Ravi Mathur *Ghaziabad*

@ieExplained
#ExpressExplained
If there are questions of current or contemporary relevance that you would like explained, please write to **explained@indianexpress.com**

TELLING NUMBERS

TB burden in India and world, and the declining rates

2.69 MN CASES IN INDIA, 2018

WORLD: 10 mn cases (7 mn diagnosed, 3 mn undetected)

INDIA BREAKUP: 56% men, 31% women, 13% children

WORLD BREAKUP: 57% men, 32% women, 11% children

4.49 LAKH DEATHS IN INDIA

WORLD: 15 lakh deaths

INCLUDING: 2.51 lakh deaths of people with HIV

TB is the leading killer of people with HIV

INDIA INCIDENCE RATE FROM 300/LAKH (2000) TO 199/LAKH (2018)

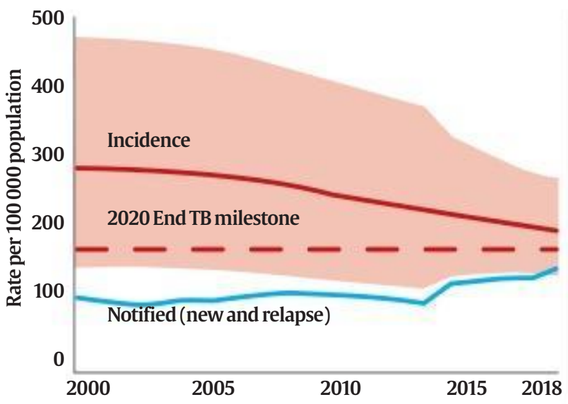

INDIA MORTALITY RATE FROM 60/LAKH (2000) TO 32/LAKH (2018)

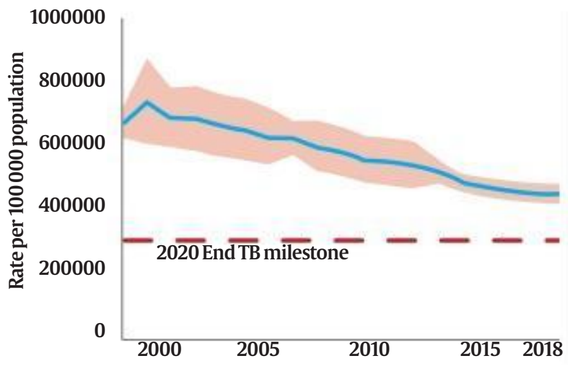

Source: WHO Global Tuberculosis Report 2019

ON THURSDAY, the World Health Organization released its annual Global Tuberculosis Report for 2019, which found India was able to reduce incidence in 2018 by almost 50,000 cases from the previous year, but still had the highest burden with 2.69 million cases — 26.9% of the global burden of 10 million (*The Indian Express*, October 18).

Of the 10 million new cases, 7 million were reported to authorities, including 1.99 million of the 2.69 million in India. Globally, TB claimed 15 lakh lives in 2018, including 2.51 lakh with HIV. The 15 lakh included 4.49 lakh deaths in India (9,700 lakh had HIV), down from over 6 lakh in 2000.

TB incidence rate in India dropped from almost 300 per lakh population in 2000 to 199/lakh in 2018, as compared to a global decline from 170/lakh to 132/lakh. The mortality rate in India declined from almost 60 deaths per lakh population (HIV-negative) in 2000 to 32 per lakh in 2018, while the global mortality rate declined at the same rate, from 30/lakh to 16/lakh.

TIP FOR READING LIST

HISTORY OF THE MULTIVERSE CONCEPT

MULTIVERSE IS a scientific concept that has become commonly used because of the popularity of the Marvel Cinematic Universe. In *Avengers: Endgame*, the Ancient One explains how removing any of the Infinity Stones will create splinter timelines, each continuing alongside the original one, with a different universe along each timeline. This idea is not just restricted to science fiction. Some scientists believe that our universe may indeed be just one of many. The idea goes back many centuries, in fact, and it is this history that Tom Siegfried, former editor-in-chief of *Science Magazine*, explores in his new book *The Number of the Heavens: A History of the Multiverse and the Quest to Understand the Cosmos*.

"While 'multiverse' is in the book's subtitle, and Siegfried starts the book with contemporary discussions about it, much of the book is a historical account of how our understanding of just what comprises the universe has evolved," *The Space Review* writes in its review. The book traces the history of this idea from the time of the Ancient Greek philosophers, who first raised the possibility of multiple universes. During the Renaissance, René Descartes declared "the number of the heavens" to be indefinitely large. In the 1980s, new theories about the Big Bang led to renewed interest in the multiverse. And today, some cosmologists and physicists are debating about the possibility of parallel universes.

SIMPLY PUT

Monsoon out, monsoon in

The day the southwest monsoon finally withdrew, the northeast monsoon arrived. The winter monsoon brings much less rain than the summer monsoon, but it is important for the South, especially Tamil Nadu

AMITABH SINHA
PUNE, OCTOBER 18

THIS WEDNESDAY witnessed a rare meteorological coincidence. The southwest, or summer, monsoon, finally withdrew from the country, having overstayed and delayed its retreat by a record time. The same day, the northeast, or winter, monsoon made its onset, on time. The two events rarely happen simultaneously, though the three month-winter monsoon season is supposed to begin almost immediately after the end of the June-September summer monsoon season.

In common vocabulary, a reference to the monsoon usually means the southwest summer monsoon. That is because it is the main monsoon season that brings widespread rain all across the country. For many parts of India, this is the only time they receive rainfall. These four months bring about 75 per cent of India's annual rainfall.

However, for some regions of south India, it is the winter monsoon that is much more important. Though much less heard of, the northeast monsoon is as permanent a feature of the Indian subcontinent's climate system as is the summer monsoon.

Direction gives the name

The northeast monsoon does not have anything to do with the Northeast region of the country, though a part of the system does originate from the area above it. The northeast monsoon derives its name from the direction in which it travels - from the northeast to the southwest. On the other hand, the summer monsoon, at least the Arabian Sea branch of it, moves in exactly the opposite direction - from the southwest to the northeast. That is why it is also called the southwest monsoon. Of course, the summer has another branch that swerves in an anticlockwise direction in the Bay of Bengal before entering the Indian landmass and bringing rains to the eastern, northeastern and northern parts of the country.

The reversal of direction in the lower-atmosphere moisture-laden winds happens primarily due to the southward movement of Inter Tropical Convergence Zone (ITCZ) during the withdrawal phase. The ITCZ is a dynamic region near the Equator where the trade winds of the northern and southern hemispheres come together. The intense sun and warm waters of the ocean heat up the air in this region and increase its moisture content. As the air rises, it cools, and releases the accumulated moisture, thus bringing rainfall.

During the monsoon season, this ITCZ is located over the Indian landmass. By September, as the temperature in the northern hemisphere begins to go down, the ITCZ starts moving southwards, towards the Equator, and further into the southern hemisphere where the summer season begins to take shape.

Rain over Southern Peninsula

The months of October, November and December are supposed to comprise the northeast monsoon season, though the normal date for the onset of this monsoon is only around October 20. The southern peninsular region receives rains in the first half of October as well, but that is attributable to the retreating summer monsoon. The summer monsoon season ends on September 30 but the withdrawal does not happen overnight. From the beginning of the season, as it starts its northward journey over the Indian landmass, the monsoon takes a month and a half to cover the entire country. The southward withdrawal takes place over a period of three to four weeks. It usually starts around the second week of September and continues till about the second week of October, bringing rain as it retreats. This year, the withdrawal was completed in just eight days, beginning on October 9.

The northeast monsoon season brings rainfall to just five of the 36 meteorological divisions in the country — Tamil Nadu (which includes Puducherry), Kerala, Coastal Andhra Pradesh, Rayalaseema and South Interior Karnataka. As such, this season contributes only 11 per cent to India's annual rainfall of 1,187 mm, compared to about 75 per cent in the summer monsoon season (the remaining rain comes in other non-monsoon months).

Many other parts of the country, like the Gangetic plains and northern states, also receive some rain in November and December but this is not due to the northeast monsoon. It is caused mainly by the Western Disturbances, an eastward-moving rain-bearing wind system that originates beyond Afghanistan and Iran, picking up moisture from as far as the Mediterranean Sea, even the Atlantic Ocean.

The northeast monsoon is particularly important for Tamil Nadu, which receives almost half its annual rainfall (438 mm of the annual 914.4 mm) during this season. The southwest monsoon contributes just 35 per cent to Tamil Nadu's annual rainfall (the rest comes in other non-monsoon months). Within the state, some districts get up to 60 per cent of their annual rainfall during this time. Similarly, Rayalaseema region and Coastal Andhra Pradesh both about 30 per cent, and South Interior Karnataka receives about 20 per cent of its annual rainfall during the northeast monsoon season (see chart).

El Niño impact

Like the southwest monsoon, the northeast monsoon is also impacted by the warming and cooling of sea surface waters in the central Pacific Ocean. But the impact is the opposite. The northeast monsoon is known to receive a boost from El Niño, when the sea surface temperatures in the equatorial Pacific Ocean, off the western coast of South America, are warmer than usual. And, when the opposite phenomena La Niña happens, rainfall during the northeast monsoon is known to get depressed. This year the El Niño Southern Oscillation, or ENSO, is in neutral state and is likely to remain like that for the rest of the year.

Unlike for the southwest monsoon, the India Meteorological Department does not come out with a long-range forecast for the winter monsoon. But after unusually high rainfall during the southwest monsoon, the northeast monsoon is also expected to deliver good rainfall. According to an analysis by Sridhar Balasubramanian, an associate professor of mechanical engineering and an adjunct faculty member at IDP Climate Studies at IIT Bombay, this year's northeast monsoon is likely to be normal, and likely to result in rainfall that is 100-102 per cent of the long period average. November is likely to be the wettest month of the season.

HOW MUCH RAIN, WHERE

Northeast monsoon rain at Chennai Central on Thursday morning. *Express*

Region	Annual Rainfall	NE Monsoon	Percentage
Kerala	2924	481	16.4
Tamil Nadu	914	438	47.92
South Interior Karnataka	1019	210	20.6
Rayalaseema	706	219	31
Coastal Andhra Pradesh	1024	327	31.93

Source: IMD

All India average annual: 1,187 mm (SW monsoon 887 mm, NE monsoon 127 mm)

THIS WORD MEANS

SPECTROSCOPY

Science behind latest Chandrayaan-2 image, and why these graphs matter

ON WEDNESDAY, the Indian Space Research Organisation (ISRO) released an image from Chandrayaan-2 showing measurements from the Moon, carried out by the instrument Imaging Infrared Spectrometer (IIRS). Such studies make up a branch of physics called spectroscopy.

It is well known how visible light can disperse into rainbow colours after passing through a prism. The science of spectroscopy grew from there, and today it has extended to include the study of interaction between matter and electromagnetic radiation. IIRS is designed to measure light from the lunar surface in narrow spectral channels (bands). It has the ability to split and disperse reflected sunlight (and its emitted component) into these spectral bands.

From the reflected solar spectrum, scientists will look for signatures, including of minerals. This will help map the lunar surface composition, which in turn will help us understand the Moon's origin and evolution in a geologic context.

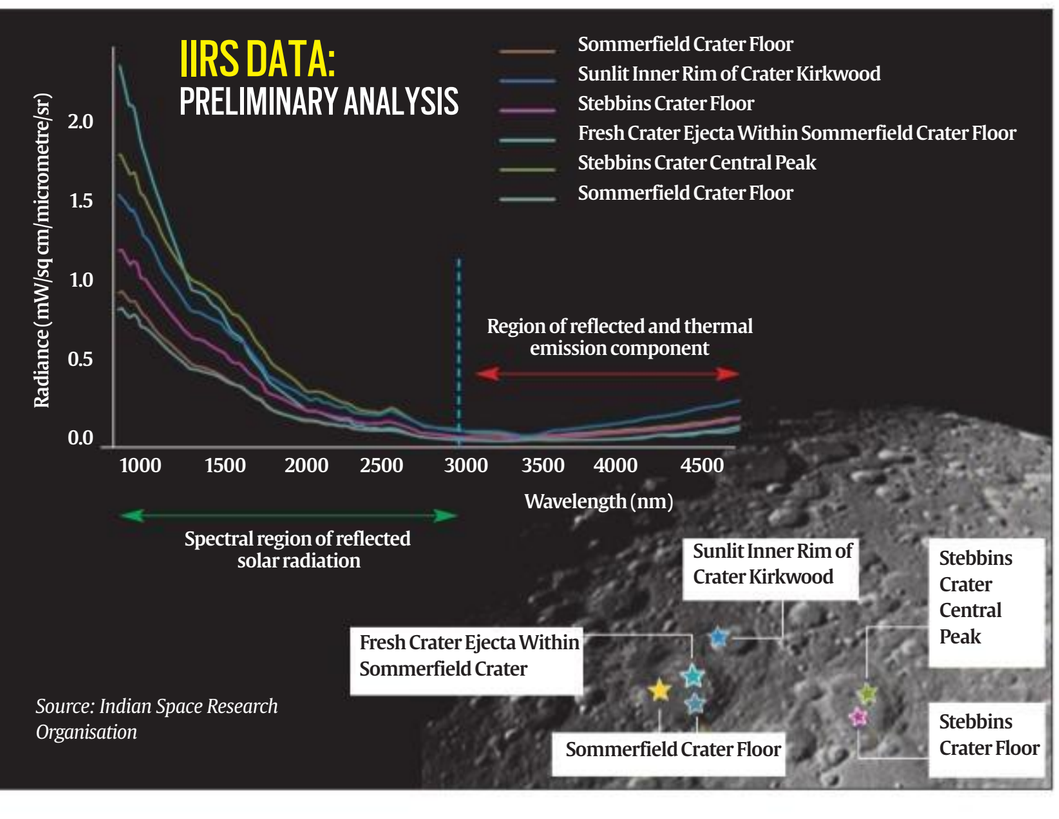

Source: Indian Space Research Organisation

More than the numbers: why all-women spacewalk is a milestone

MEHR GILL
NEW DELHI, OCTOBER 18

ON FRIDAY, NASA astronauts Jessica Meir and Christina Koch carried out the first all-women spacewalk in history. Their mission was to carry out repairs on the International Space Station. What makes it historic, however, is not just the fact that it is a first, but also the events leading up to the event, including a failed earlier attempt.

What happened the first time?

The first all-women spacewalk was originally meant to happen on March 29. Koch was one of the astronauts then, too, the other being Anne McClain. It did not happen because the International Space Station did not have enough spacesuits McClain's size.

McClain had trained in two sizes, and was meant to wear a size-large upper torso on the historic spacewalk. After one spacewalk (not all-women), she figured that a size-medium upper torso would work best for her. However, only one such upper torso was ready for use at that time, and Koch was to wear that one. So, McClain's slot was given to Nick Hague (size large), who walked with Koch.

What is "ready for use"?

Spacesuits need to be configured to an astronaut's body size before a spacewalk. It can take up to 12 hours to safely prepare spacesuits for a spacewalk, Stephanie Schierholz, NASA spokesperson, told space.com at that time. To avoid delay and for safety reasons, the swap was necessary. Putting on a spacesuit takes 45 minutes.

On March 27, McClain tweeted, "This decision was based on my recommendation. Leaders must make tough calls, and I am fortunate to work with a team who trusts my judgement. We must never accept a risk that can instead be mitigated. Safety of the crew and execution of the mission come first."

McClain later went on another spacewalk.

If safety was the concern, why was the change of schedule an issue?

It sparked widespread criticism. While NASA is generally regarded as being sensitive to gender issues (Koch's and Meir's 2013 class of astronaut candidates was 50% women), many women saw the lack of availability of the right spacesuit as a sign of NASA's structural problems with regard to women astronauts.

Jessica Meir (left) went on her first spacewalk; Christina Koch (right) on her fourth. *NASA*

"Make another suit," Hillary Clinton tweeted, while British politician Amelia Womack tweeted, "How women miss out when the world is built around men." And Author Mary Robinette Kowal, winner of the Hugo Award, posted a tweet that appeared to imply gender bias in the spacesuits sizes that were given priority.

"NASA used to have small, medium, large and extra-large suits. For budget reasons, the small and XL suits were cut. However, many of the male astronauts could not fit into the L suits, so the XLs were brought back. The small suits never were," Robinette Kowal tweeted.

Until now, 213 men and 14 women (including Koch) had done spacewalks; Meir became the 15th.

As the debate raged, NASA tweeted, "We've seen your tweets about spacesuit availability for Friday's spacewalk. To clarify, we have more than 1 medium size space suit torso aboard, but to stay on schedule with @Space_Station upgrades, it's safer & faster to change spacewalker assignments than reconfigure spacesuits."

Why must spacesuit specifications be so precise?

A spacesuit, or Extravehicular Mobility Unit (EMU), is worn to be able to work outside the space station. Spacesuits provide astronauts with oxygen supply while they are in the vacuum of space and the suits also give them protection against extreme temperatures, radiation and space dust.

An EMU consists of components such as the upper torso, lower torso, gloves and arms, which are manufactured in different sizes and assembled together in combinations that fits an astronaut best. In McClain's case, it would have meant swapping parts. Spacesuits are not designed differently for men and women astronauts.

The EMUs currently in use were developed in 1974. These are reusable, and have been refurbished and redesigned many times in the last 40 years.

Is there no plan for an upgrade?

On October 15, NASA unveiled its next generation of spacesuits. One kind, called xEMU, will improve upon suits previously worn during the Apollo era and those that are currently in use for carrying out spacewalks outside the ISS. The Orion suit, meanwhile, is designed for a custom fit and incorporates safety technology and mobility features that will help protect astronauts during launch, in emergency situations, high-risk parts of missions near the Moon, and during the high-speed return to Earth, NASA said.

Significantly, the xEMU suits will be worn by astronauts on the Artemis mission to the Moon. As NASA pointed out while announcing the new spacesuits, the mission will seek to put the next man and the first woman on the Moon.

Bad news gets worse

COUNTRY CODE

RAHUL JACOB

In an age of constant news alerts, bad news feeds on itself until it becomes a kind of mass whispering campaign. Even discounting for that, the unforgiving run of economic news in the past 10 days or so has been worse than in several years. Rural household consumption dropping to a seven-year low as both farmers and landless labourers suffer drops in incomes suggests the bottom is falling out of the bottom of the pyramid. The acute shortage of liquidity among traders and shopkeepers in rural areas, which is forcing multinationals to step in to extend financial support, points to the continuing collateral damage from our crisis in the non-bank financial sector. The decline in exports for yet another month and a steeper drop in imports brought home the effects of a global/national slowdown.

Just when you think economic news can't get worse, it does. The volatile industrial production index contracted month on month by 4.2 per cent in August (seasonally adjusted), the steepest decline in five years. Even though consumer prices (excluding vegetables) are up a manageable 3.2 per cent, the huge jump in onion prices is a reminder that India is a flailing state, unable to fix these recurrent problems with the storage and supply chain management of a staple food for years on end. The Reserve Bank's bi-monthly review shone a spotlight on the decline in capacity utilisation at India's factories, which fell to levels just below those seen in 2008 during the global financial crisis. The RBI's quarterly survey showed business confidence had dropped to levels not seen since the global financial shock. Order books of manufacturing companies contracted by 23 per cent in the quarter ending June 30.

When the discussion of the economy becomes more widespread than debating politics or cricket, India has a problem. During the taper tantrum in the summer of 2013, before Raghuram Rajan's eloquent defence helped stabilise things, I happened to visit my often comically blunt Chinese tailor in Hong Kong. When I told him I was relocating to India, he wondered aloud what sort of person would make such a decision with the rupee in free fall.

Yesterday, it was a trip to the dentist in Bengaluru that prompted déjà vu. I had barely slid into my chair at the Khincha Dental Centre when my dentist remarked on the dichotomy between the $3 billion sold by Amazon and Flipkart et al in their recent festival sales and the general malaise of the economy. Was it the lipstick effect, he wondered? His reference was to the theory that in bad times, consumers will selectively spend on a luxury item. That is as good an explanation as any for the 30 per cent jump in gross merchandise value in the festival sales this year versus last year — except that GMV is questionable in accounting terms and not a reliable yardstick of the health of the economy. Given the scale of discounting and the likelihood that this government will soon issue a *fatwa* against deep discounting, consumers would have been foolish not to shop.

The jump in e-commerce GMVs aside, there is little to suggest the economy is turning the corner. In fact, worse may be ahead. The merry go round that is the world of e-commerce is in the midst of a reality check. There has been a sharp slowdown in the number of start-up funding deals and in the launch of new start-ups over the past two years, according to a recent analysis in Mint. For another, if the government signs on to the Regional Comprehensive Economic Partnership, the shock to many of our producers could be severe. It is not obvious at all that joining is going to miraculously turn around huge trade deficits we currently run with this cohort. India's trade deficit with these countries almost doubled from $54 billion in 2013-14 to $105 billion in 2018-19. A free trade agreement with Europe, for instance, would be less risky and more beneficial.

Given the mounting stresses the economy, it is quite probable we will have another alarming revelation or three in the financial sector. As Ananth Narayan, former regional head for financial markets for Southeast and South Asia at Standard Chartered, points out in a piece for CNBC, "NBFCs reported (gross non-performing assets) GNPA of 6.6 per cent of advances as of March 2019 — lower than the 9.3 per cent reported by banks. Few analysts believe this reported NBFC GNPA."

He suggests India follow an initiative in the late 1990s to carve out bad assets from Malaysia's financial system. After the Asian financial crisis, the government-backed Danaharta bid for Malaysia's large stressed assets. Financial institutions could refuse to sell but were then required to take punishing provisions on the assets. On the other hand, "if Danaharta recovered more than the original bid price through the resolution process, 80 per cent of the surplus recovery was returned to the original financial institution", writes Narayan. Danaharta eventually reported an overall recovery rate of almost 60 per cent. Without similarly bold action to deal with our banking crisis, count on the economy's doldrums to continue for much longer than most of us anticipate.

2021: The year of BJP's Great Test

Elections are due in Tamil Nadu and West Bengal that year. Early indications show Bengal holds promise; the party might have to recast itself to win over Tamil Nadu

PLAIN POLITICS

ADITI PHADNIS

Tamil Nadu appears to be fast becoming an independent republic. It defied national sentiment during the 2019 Lok Sabha elections to vote for the opposition Dravida Munnetra Kazhagam (DMK)-Congress alliance. The Congress may be wringing its hands about the loss of its leaders and might be ambivalent about its stand of Article 370, but DMK MP Tiruchi Siva's speech on August 5 was a stellar call for democracy and humaneness in Kashmir. Speaking against the motion, he said: "Sir, we have to re-assure in this situation that no force on the earth can take away the special status provided to Kashmir... Even Shri Atal Bihari Vajpayee initiated to hold talks with Kashmir. It is not only within the framework of the Constitution, it should also be within the framework of humanity... Kindly don't resort to force... We have to win the hearts and the minds of the people in Kashmir..." His intervention revolved around an appeal to consult with stakeholders.

Earlier this month, at a time when Prime Minister Narendra Modi is at the height of his popularity, #modigoback hashtag started trending on Twitter during the Mahabalipuram meeting of the Indian PM with Chinese Premier Xi Jinping. Modi's gesture of appearing in a veshti apparently failed to melt Tamil hearts!

In the rest of India, the Bharatiya Janata Party (BJP) seems invincible. But in Tamil Nadu, it is seeking props. It has a willing partner in the ruling All India Anna Dravida Munnetra Kazhagam (AIADMK) which was also its ally in 2019. However, new political challenges could appear in the coming months and the BJP might face a struggle in putting down roots in the state.

In October, Jayalalithaa aide Sasikala completes two thirds of her four-year prison term in the Parappana Agrahara prison near Bengaluru where she is lodged for corruption charges. According to Karnataka parole and furlough rules, a prisoner who has demonstrated good conduct is eligible for early release after completing two thirds of the tenure depending on the judgment of the statutory advisory board. So she could be out of jail sooner than expected. An early release will give her time to reorganise the Amma Makkal Munnetra Kazhagam (AMMK) currently led by her nephew TTV Dhinakaran.

The AMMK and the rump of the Jayalalithaa's party, the AIADMK (which is currently in power in Tamil Nadu), are pitted against each other in a fight for survival. At stake is a significant vote bank: the legacy of Jayalalithaa. In the Lok Sabha elections, Dhinakaran's AMMK was able to win only about 5 per cent of the votes and not a single seat. But a lot has happened since then. The party has a new symbol, many have walked out and it has opted not to contest the Vikravandi and Nanguneri Assembly by-election due October 21 in a bid to conserve its energies.

Elections for the Tamil Nadu Assembly are still some distance away. The state will go to the polls in 2021. A hint of whether the DMK continues to be as popular as it was in 2019 (it won 37 Lok Sabha seats out of 39) will be available on October 24 when the results of the by-election are declared.

But it is clear that Sasikala's early release will have an unpredictable impact on politics in the state. Will she be able to bring about a realignment of forces loyal to Jayalalithaa, thereby preventing a division of votes between the AIADMK and the AMMK? Or is the field free for the DMK (and its ally, the Congress)? Can the BJP spread its wings in Tamil Nadu however unlikely that proposition might appear at present?

At this point there are no clear answers. 2021 promises to be the year of the Great Test for the BJP, with elections due in Tamil Nadu and West Bengal. Early indications show Bengal holds promise for the party. But it may have to recast itself significantly to win over the people of Tamil Nadu.

TÊTE-À-TÊTE WITH BS ▸ RANA DASGUPTA | AUTHOR

Citizen of the world

Dasgupta talks to **Uttaran Das Gupta** about what it means to be the director of a major literary prize and his new book

ILLUSTRATION BY BINAY SINHA

Rana Dasgupta is a busy man. He is the literary director of the JCB Prize, one of the most lucrative awards for Indian fiction writers. He has been teaching in Brown University and organising conferences in Europe. How does all this public activity affect his writing, which is essentially a private pursuit? His last book, *Capital: A Portrait of Twenty-First Century Delhi* — which won the Ryszard Kapuściński Award for Literary Reportage, 2017, and was shortlisted for the Orwell Prize and the Royal Society of Literature Ondaatje Prize — was published five years back, and he says he is still working on the next one.

"Oh, it's fatal," he replies, "while I sit here talking to you, my book does not get written." But he is quick to add that the JCB Prize is something he believes in. "I don't think it is incumbent on artistes, but they should think of the context in which their art is made. Many writers organise to protect the right of other writers, to protect those who are in prison. The prize is such a project for me." Dasgupta says there is not enough attention paid to literary fiction in India. "There is very little media coverage and rather little money. We are trying to create a healthy ecosystem."

Established in 2018, the JCB Prize — funded by construction equipment maker JCB and administered by the JCB Literary Foundation — recognises a work of fiction by an Indian writer. The prize money is ₹25 lakh; if it is a translation into English, the translator gets an additional ₹10 lakh. Last year, the winner was Benyamin's Malayalam novel *Jasmine Days*, translated into English by Shahnaz Habib. This year, the shortlist includes translations of Perumal Murugan and Manoranjan Byapari, as well as original English works by Roshan Ali, Madhuri Vijay and Hansda Sowvendra Shekhar. The winner will be declared on November 2.

I meet Dasgupta at his Airbnb accommodation in a leafy south Delhi neighbourhood. The deviation from the regular format of this column, where we meet *BS'* guest at a restaurant or café, is on my request. I wish to eliminate as many distractions as possible for the benefit of the multimedia format in which we will conduct the interaction. As my taxi pulls up in front of the address where I am supposed to meet Dasgupta, I regret not thinking ahead and getting some coffee, or maybe ordering something online. Dasgupta opens the door himself and invites us into his airy, well-lit living room.

This is not a typical "writer's residence" as you might imagine it — there are no booklined walls, no writing table overflowing with papers, no hidden typewriter. Dasgupta's laptop is on the centre table of the drawing room when we arrive, but he removes it quickly, and we discuss what we will talk about as the equipment is set up. "We'll talk about your writing and why we have not seen a book from you in five years," I tell him. He can't help laughing out at the prospect of discussing it. "It's a terrifying question," he says. And, we are off.

Though I had earlier read all of Dasgupta's work, as part of my research I revisited all three — besides *Capital*, his two novels, *Tokyo Cancelled* (2005), which was shortlisted for the John Llewellyn Rhys Prize, and *Solo* (2009). In the blurb for *Solo*, Salman Rushdie wrote: "[It] confirms Dasgupta as the most unexpected and original Indian writer of his generation." Blurbs tend to be superfluous, but this is spot on — the novel is about the life and times of a Bulgarian chemist and musician, set mostly in Sofia. Few Indian writers I know have explored the rich history of eastern Europe; the only exception I can think of is Nirmal Verma's *Ve Din (Days of Longing)*, set in Prague.

"People often say that writers write only one book and they keep doing it," Dasgupta says. "When I finished my first book, people expected me to write a big Indian novel." Dasgupta quickly adds that all his books have been written in India; he has been living here since 2000. "Many people bought my book thinking it would be about India. They were disappointed." *Solo* won the Commonwealth Writers' Prize for Best Book in 2010. He adds, "There seems to be an expectation, especially of non-Western writers that they will write again and again about their supposed ancestral place. I think it's unfair for people to be condemned to do that."

As he keeps narrating this, I can't help thinking of my own travels in Vienna and Prague. How wonderful it would be sit over a cup of coffee on the banks of the Vltava, listening to these tales.

Dasgupta says that he fell in love with Bulgaria — its landscape, music, and history. "It has a melancholic history," he says, adding that writing *Solo* was an effort at inhabiting the histories of other people. "It was radically different, but also very similar." I wonder how much of this interest in cosmopolitanism is a result of his personal history — he was born and educated in the UK, has lived in India, and worked in the US. "Yes, I have a British mother and an Indian father. I have lived in several countries, and I feel most at home with cosmopolitan thinkers. I am fascinated by the ideas of commerce and exchange."

In March 2017, Dasgupta co-curated a conference, "Now is the Time of Monsters: What Comes After Nations?" in Berlin. The curatorial statement said: "The nation-state has become so fundamental to today's thinking that other possibilities of political organisation have become unimaginable — though at the beginning of the 20th century many other options were imagined and discussed around the world." To me, questioning the pre-eminence of the nation state seems deeply intertwined with Dasgupta's other interests. "We are too quickly persuaded by things that are very visible now," he says, "like the emergence of powerful national leaders, who are trying to rein in some of the tendencies of cosmopolitanism and globalisation." For Dasgupta, this comes from a moment of weakness because leaders of nation states have lost a lot of their authority. "These leaders can still command the army and control the borders, but do they really have any control over the economy?"

This is also the subject of his next book. "You asked me earlier why I have not published a book in five years. That's because it's big book," he says. "To even answer the question as to why we live in nation states now, we had to go back to the fall of the Roman Empire." With most nations in the world being under a century old, and none really older than 200-300 years, the jury is still out on whether this model is a success. "Many of the poorer states are collapsing; the richer ones are in a strange sort of self-destructive mode, the most obvious example of which is Britain. If you think of it, the crisis seems to have come very early in the history of nation states. Empires — Roman, Ottoman, Persian — often lasted centuries."

Titled *After Nations*, the book aims to provoke people to think about political evolution. "It's like biological evolution," says Dasgupta. "Most people think we are not evolving anymore but that's not true." The moment of crisis in the nation state is linked to the crisis in capitalism. "The nation is not disappearing; our nations are very profound," he adds, "But I do think our nations needs more scaffolding."

His yet-to-be-completed book seems to be a marked departure from his previous one, which was about changes experienced by Delhi since India opened up its economy. "Don't you think this city, like many other global cities, has an existence, an identity, beyond the nation?" I ask him. "Yes, it is often commented that there is more in common between major cities of the world than between their countries. Cities can get imaginatively dislodged from their surroundings," he says, adding that the 20th century tried in some ways to obscure this fact.

We can only hope that the new book will soon overcome the many distractions its author encounters.

What Durga *pujo* really means

PEOPLE LIKE THEM

KEYA SARKAR

Every time I see print and television advertisements of online stores for groceries, fruits, vegetable, milk, fish and meat, I consider myself lucky to be in a small town where one still has the luxury of having everything delivered at one's doorstep without the need for a screen.

There is a certain joy of seeing and handling a loaded cart of fresh vegetables before buying. Or having the fish cut in a specific type or piece that one wants. Of course, the flipside is that unlike a search and 'click to buy' option here, the vendor has ample opportunity of push selling a little more by playing on your sentiment. "I brought this especially for you," I am often told by my vegetable vendor Ram, when he figures my purchases are lower than usual.

Also whenever I tell him not to come for a few days because we will be out of town, his admonishment is fierce. "Again," he says in a stern manner reminding me of the days when my father reacted the same way when told him I would be out with friends and not come home for dinner.

Since my husband is vegetarian, my engagement with the fish vendor is less frequent. I buy fish only when friends or relatives visit. I call him at night and he delivers the next morning. Nine times out of 10 he manages to procure the type of fish that I ask for. Sometimes, (especially in winter, when most visitors come to Santiniketan), my calls to him are frequent and at others, not so. But if there is a long gap between my calls, he actually swings by to tell me, "*Didi*, at this rate you will forget to eat fish".

Then, there is the milk man Kanu who lives in a village 30 km away but comes by bus to deliver milk every day. That's his day job. He is a professional *kirtan* singer in his village. He often sings as he enters our gate, empties the bottle of milk into our vessel and leaves without exchanging a word.

We have been to all their houses and thus know the families as well. It is amazing how well they have fed us whenever we have been invited for different festivities. My fish monger, Israel, however, is rather constrained in feeding my husband for Muslim festivals. But thankfully he eats eggs. So there are always two boiled eggs on a plate to make up for his lack of appreciation of meat.

During *pujo*, many people from Kolkata who have houses in Santiniketan leave Kolkata to escape the noise pollution. Since Santiniketan is relatively quiet even during *pujo*, many spend five days here partying and feasting. So Israel got a few calls during *pujo* to deliver fish for the times we were hosting the party.

On one such visit, almost towards the end of the festivities, he asked me whether I had been able to see all the *pujo pandals*. When I said I hadn't, he was particularly disapproving. "You must go," he said. "I have been taking my grandchildren every day."

Just as I was thinking about how interesting it was that Muslim families were also actively participating and making the most of the Durga *pujo* festivities, I realised it was not just restricted to pandal hopping. The next day, when I went to work many of the Muslim girls who work in my studio came and touched my feet and wished me *shubho bijoya*.

My current tryst with Kolkata

PEOPLE LIKE US

KISHORE SINGH

I knew Kolkata, when it was still Calcutta, or at least the parts that mattered most, reasonably well — though that was ages ago. Intermittent work trips over the decades made no allowance for nostalgia. No jaunts to New Market, pre- or post the fire, or to Nahoum for plum cake and stick-jaws; no scrounging for second-hand books on Free School Street, or seeking out antiques at the Russell Exchange; no trying on handcrafted shoes at the Chinese shoe shops on Park Street; no guilty pleasures in a "family room" in a Chinese dive with a girlfriend.

Recent trips have unearthed the same old city in different ways. The trams are (almost) gone, but Uber hasn't yet obliterated the yellow Ambassadors. The *phuchkawalas* still ply their trade on the road but the streets are cleaner than before — the work of ploggers? You still can't get into the snobbier clubs in jeans or sockless shoes, but those old favourites — Trincas, Mocambo, Peter Cat — are still around, with waiters in "bearer" outfits reminiscent of the Raj. Service across all establishments is — shall we say — leisurely. In one coffee shop in the post-lunch lull, it took an hour-and-a-half to be served omelettes. The pavement kiosks continue to thrive, cocking a snook at the glitzier malls, though the cobbled pavements are torture to walk on. The chaotic traffic and blowing of horns must qualify it as the noisiest city in the country.

Here are some cribs. It's easier to get kebabs in Kolkata than *mangsho* and *luchi*; *paneer* is more mainstay than *shukto*. Bengali *biryani* might be fine but most places serve oily rolls in the name of *kathis*. At a branch of a well-known Bengali diner where, having ordered *malai-chingri* because the *daab-chingri* would take 20 minutes, we were informed a half-hour later that there was no more *malai-chingri*, so we would have our *daab-chingri* after all. Our order of beverages failed to materialise because, one of the managers on duty courteously informed us, "I'm from the New Market branch". By the end of the meal, the *chingris* — *daab* or *malai* — hadn't made an appearance. Kolkata, you owe me a dish of prawns.

The most astounding change, though, is the lights. Streetlamp poles throughout the city are wrapped in blue lights, vastly different from when blackouts used to be rampant. Restaurant entrances are festooned with fairylights. I was familiar with the festivities leading to *Boro din* — Christmas — but Park Street and its environs are now illuminated with the most dazzling array of coloured lights that were put up for Durga *puja* and will remain in place till New Year's. In a world where technology has made showstoppers of streetscapes, at best the lights look tinselly and kitschy, but that's part of the charm.

My current tryst with Kolkata isn't over — yet — so I might still make it to Calcutta Club, provided I remember to pack a collared shirt and formal pants. Or spend a Sunday pottering around the auction houses and antique stores where you can still come across meat platters for Anglo-Indian food, or chamber pots for washing up at the sink from when there was no running water in homes. And a trip to the banks of the Hooghly without which there wouldn't be a Calcutta/Kolkata, with or without lights, is one for the bucket list.

Weekend Business Standard
Volume VII Number 12
MUMBAI | 19 OCTOBER 2019

WEEKEND RUMINATIONS

T N NINAN

Statistical optimism

The corrections to growth forecasts have come thick and fast, from the Reserve Bank of India (RBI), the World Bank, the International Monetary Fund (IMF), rating agencies, investment banks, and sundry others. Almost all of them now place GDP growth for India this fiscal year at 6 per cent, give or take a decimal point or two. These are seen by most observers as downbeat numbers, given that previous forecasts not long ago were close to or at 7 per cent — in the Economic Survey, RBI reports, and elsewhere. Certainly 6 per cent is a big climbdown from last year's already sub-optimal 6.8 per cent. We are experiencing the slowest economic growth since 2012-13.

Yet the forecast of even a modest 6 per cent growth rate for the year looks just now like an essay in optimism, considering that the first quarter has clocked just 5 per cent, and the second quarter brought little by way of good news. Growth would have to be 7 per cent in the October-March period, if the year as a whole is to clock 6 per cent. Who would bet on that when, in the world of real numbers, both exports and imports have continued to fall, car sales have continued to slump, and the industrial production index shows yet again a drop in output? For good measure, tax revenue (especially from the tale-telling goods and services tax) lags Budget numbers, corporate results *sans* the tax break are disappointing, credit flow is poor, fuel consumption trends show a loss of momentum, residential real estate sales continue to plumb the depths, orders for capital goods remain scarce, and the sales of items of everyday consumption have slowed. Even sectors growing rapidly till recently, like aviation and cement, now report little or no growth. It is hard to square all this with the uptick that the forecasters see as being already under way.

But the economic soothsayers who have been polled by the RBI may well be right when they predict a pick-up to 5.8 per cent growth for the July-September quarter, and still better numbers for the current quarter (6.4 per cent) and the next one (7.2 per cent). The secret to their optimistic jump from 5 per cent to 7.2 per cent in three short quarters lies in that familiar statistical quirk: A low base from which growth is measured. For the same reason, reversion to annual growth of 7 per cent or more in 2020-21 should not be seen as unhinged from reality.

These numbers are best understood by starting with the post-demonetisation slump in growth, in April-June 2017, to 5.7 per cent. That low base helped the same quarter a year later, in 2018, to report 8.2 per cent growth. This then became the high base that pushed down the April-June number this year, 2019, to 5 per cent. If one irons out these statistical swings, and averages out growth for the same quarter over three years, the figure is 6.3 per cent — unimpressive, but not a number that should provoke so much breast-beating in a slowing world economy! Do the same exercise for the last three second quarters (July-September, 2017-18-19, including the forecast of 5.8 per cent for this year) and the average works out to 6.4 per cent — signalling no real change. The forecasts for the third and fourth quarters, in comparison, point to a mild uptick, the three-year average quarterly numbers going up to 6.7 per cent and 6.9 per cent in successive quarters. In other words, what the forecasters expect is only a slow revival in the second half of the financial year.

Is even this modest optimism justified? On the strength of the worsening numbers being reported from different segments of the system, perhaps not yet. Nor will a recovery be helped by the fact that the global economy is going through what the IMF calls a synchronised slowdown. But all downturns must end, and a recovery will eventually materialise. So wait for the first half of the next financial year, when this year's really low statistical base will yield some magical growth numbers. That's when the government's PR machine will go into overdrive!

Congress and Savarkaritis

Confusion in Congress over Veer Savarkar has once again exposed its ambivalence on nationalism. It needs to learn from Indira Gandhi's politics

NATIONAL INTEREST

SHEKHAR GUPTA

The most intriguing thing about the latest Bharat Ratna-for-Savarkar controversy is how it has left the Congress with its knickers, *khaki* or not, in a twist.

Between outright condemnation of Savarkar as a Nazi, a hateful bigot, and a Gandhi assassination "conspirator" who got away on a technicality, and Manmohan Singh's way more nuanced "we respect Savarkar ji but do not agree with his ideology", the Congress does not know its party line on an issue as sensitive as this. Especially with the Maharashtra election campaign on.

Just a day after Manmohan Singh's cautious, but more sensible statement, the party was also trying desperately to distance itself from it. It fielded its spokesman Randeep Singh Surjewala. But his attempt to further "nuance" Dr Singh's statement was desperate and pathetic. Because Dr Singh had indulged in neither sophistry, nor absent-minded ambiguity.

What he said could have been his party's position from the beginning and it would have spared itself the self-destructive back-and-forth now. Especially when legions of Savarkar fans are pulling out the facsimile of the commemorative postage stamp Indira Gandhi issued to honour him in 1970, the glowing (although cautiously diplomatic) tributes she paid him, some even in writing. Also, that she patronised a documentary on his life and even made a donation of ₹11,000 (equal to about ₹5 lakh now) to a memorial fund. So how does the Congress square its current position with hers?

Indira Gandhi was no P V Narasimha Rao, whom the Congress has repudiated and purged for his "soft secularism", if not closet Hindutva, "wearing *khaki* 'knickers' under his *dhoti*". They have also demanded a return to the party's old-style hard secularism.

Indira Gandhi is different. No one in the Congress would dare accuse her of being soft in her secularism, on Hindutva, or on anything else. Evidence of her "toughness" lies across our geography (where it worked well, liberation of Bangladesh) and history (where it didn't, Emergency).

It's a very well-known fact but still needs restating in this context that 60-75 per cent of all those she detained during the Emergency were from the RSS and Jana Sangh. She had anything but a soft corner for them anywhere in her secular patriot's autocratic heart.

The fact is, Indira Gandhi was much more political than ideological in comparison to her legatees. Historians will look for more evidence of why she acted the way she did on Savarkar, but I will hazard the guess that because she so detested the RSS/Jana Sangh, she did not want to cede to them anyone, of any persuasion, who may have made a contribution to the freedom movement. Not when her charge against the RSS always was that it gave the freedom movement a miss and collaborated with the British.

Savarkar was the closest the RSS had to a freedom movement icon, however flawed. She wasn't going to gift him to them. To understand her thinking better, watch carefully how the Modi-Shah BJP is acting on the Congress party's long marchers' pantheon. We had noted in an earlier National Interest how the RSS/BJP had a big problem: Absence of heroes from the freedom struggle. Even non-Congress ones like Bhagat Singh and Subhas Chandra Bose were far removed from their ideology. That's why their need for "imports" from Congress has been desperate.

Minus the Gandhi-Nehru dynasty (although they have Maneka and Varun Gandhi), they've been willing to embrace just about anyone. Sardar Patel had been taken much earlier, but this government is building him into a founder of the republic bigger than Nehru. Never mind that Patel was no fan of the RSS and banned it after the assassination of Mahatma Gandhi. There is plenty of documentation available on his negative view of the RSS. But, because his differences with Nehru were stronger and better documented, he was the first old stalwart the BJP took away from the Congress.

Lal Bahadur Shastri became the next. Others, of the old Congress Hindu Right, like Madan Mohan Malaviya have been easy pickings. All of this has happened in about the past three decades. Or, to put it in a more political context, in a post-Indira India.

These three decades are also marked by another phenomenon: The Congress party's rapid shift to the ideological Left. It is true that the party has always been Left of centre. Indira Gandhi used her socialism as a deadly political weapon even if it was destructive for the economy.

No one in the Congress party would dare accuse Indira Gandhi of being soft in her secularism, on Hindutva, or on anything else. Evidence of her 'toughness' lies across our geography and history

She used the socio-populist economic ideas of her Leftist hangers-on, but never let them run her politics. She was never going to give up her Hindu identity and symbols of religiosity like the *rudraksh mala*, *poojas*, *sadhus*, and *tantriks* as well. Of course, none of her revolutionary *durbaris* dared raise a finger. This is so unlike today, when our politico-intellectual Left freely judges Rahul Gandhi for his temple visits and accuses the Manmohan view on Savarkar as a surrender to soft Hindutva. They need to face up to the harsh truth that Indira Gandhi did not treat Savarkar as an enemy or a terrorist. I repeat for emphasis: She wasn't about to disown or cede any freedom fighter to the RSS. She knew politics.

Seshadri Chari, a leading RSS intellectual and a former editor of its mouthpiece Organiser, makes an important political point. That Indira Gandhi never described the Jana Sangh/BJP as a Hindu party. She was never going to put her politics at odds with Hinduism, or surrender India's majority's faith to her biggest rivals. She persistently and deliberately dismissed it as just a "Baniya" party.

Figure out the difference. If you call them "Hindu", you create a political push away for a lot of the Hindus. Baniyas, on the other hand, are a tiny and electorally marginal group. Plus, since they represent riches, profit-making, and money-lending, especially in rural India, not many of their fellow Hindus feel so strongly for them. It also helped her dismiss the Jana Sangh/BJP claims of being reformist or pro-free markets as "good-for-nothing" mercantilists. Baniyas.

Under Sonia Gandhi, the Congress has made that shift to fighting Hindutva/Hinduism rather than mercantilism, Chari suggests. And he makes sense. The essential difference between the Congress during and after Indira Gandhi's times is this. That she employed and patronised Left intellectuals as her *durbaris* and used them and their ideas for her politics. Post-Sonia Gandhi, the Congress has increasingly let the Leftists and their intellectuals run its politics.

You want evidence: Check out the party's 2019 manifesto, promising repeal of sedition law, dilution of the Armed Forces Special Powers Act, and thinning out troops from Kashmir. If somebody had suggested that to Indira, she would have given him one kick in the butt. Or maybe she would have asked where they were fighting elections, in India or JNU.

Nehru was a socialist and had his own towering intellect. He didn't need anyone's help. In fact, the late Jaipal Reddy often said that but for Mahatma Gandhi's influence, Nehru would have been an "unreconstructed Marxist". Indira Gandhi boasted no such intellect, so needed to bring in outsiders to help construct her populism. But her politics was entirely her own. She built a deadly combination of nationalism and socialism that no "party of Baniyas" was going to beat.

The equation has reversed now. Her legatees face the Modi-Shah BJP, which has a deadlier political trishul: Nationalism, religion, and socialism. How does the Sonia-Rahul Congress respond? It is lost and therefore hypocritically ambivalent on Sabarimala, triple talaq, and Ayodhya. And if it insists on only the new, hard, Left socialism and concede nationalism and religion (also culture) to the BJP, they are fortunate to have even 52 in this Lok Sabha. A non-career politician like Dr Singh understands it. It is just that his party never listened to him.

By Special Arrangement with ThePrint

The scandal of a Nobel Laureate

BRET STEPHENS

When I was about 8 years old I wrote my first fan letter, to Roald Dahl, for "Danny, the Champion of the World." Not knowing where to find the author, I addressed the envelope to "Roald Dahl, England," and added extra postage stamps.

I never heard back.

Years later, I learned that Dahl was an anti-Semite. "There's a trait in the Jewish character that does provoke animosity, maybe it's a kind of lack of generosity toward non-Jews," he said in 1983, adding, "even a stinker like Hitler didn't just pick on them for no reason."

It's a despicable view. But I would never purge Dahl's books — arguably the finest children's literature in English — from my shelves. People with wretched prejudices can still be great writers. People who restrict their literary tastes to authors whose moral and political convictions they approve of are nearly guaranteed to have no taste at all.

That's something to consider following the furor that's greeted this year's Nobel Prize in Literature, awarded last week to the Austrian novelist and playwright Peter Handke. Wolfgang Ischinger, a former German ambassador to the US, called the choice "Shameful!"

Handke's politics are indeed shameful. He became politically notorious in the 1990s for defending Serbia's conduct during the Balkan wars — a defense that included equivocations, nearly to the point of denial, regarding Serb war crimes. In 2006, he eulogized Slobodan Milosevic, the Serbian dictator principally responsible. Asked about the corpses of Muslims massacred in Srebrenica in 1995, Handke replied, "You can stick your corpses up your arse."

Then again, if Handke's opinions were a cause of outrage, it was, in part, because he specialized in outrage: One of his earliest works is a play called "Offending the Audience." That and subsequent works (most famously, "The Goalie's Anxiety at the Penalty Kick," later made into the film by Wim Wenders) made him one of Europe's most celebrated writers long before his Serbia obsession. Like other artists before him — Colette comes to mind — Handke turned scandal into fame and fame into scandal.

Handke also resembles other writers, Nobel laureates in particular, in his awful political judgment. The late British playwright Harold Pinter (Nobel, 2005) was only slightly less zealous than Handke in his defense of Milosevic. Günter Grass (1999) opposed Germany's reunification and spent most of his life chiding his countrymen for their failure to confront their Nazi past, only to confess late in life that he had been a member of the Waffen SS. Portugal's José Saramago (1998) was an unrepentant hard-line leftist who, as a newspaper editor, purged and abused journalists who did not toe the Communist Party line. Gabriel García Márquez (1982) was a close friend of Cuban dictator Fidel Castro. Jean-Paul Sartre (1964) visited the Soviet Union in 1954 and praised it for its "complete freedom of criticism."

Given these precedents, why has the reaction to Handke's Nobel been so neuralgic?

Part of the answer, surely, is that Handke is considered a fascist (though his full political views are hardly clear), whereas Pinter, Grass and the others were all men of the left, whose fellow traveling with despots could glibly be excused, at least by other leftists, as an excess of idealism. After Saramago died in 2010, PEN America — an organization explicitly dedicated to protecting free expression — paid him fulsome tribute, with no mention of his censorious past.

But part of the answer, too, is that we live in an age that is losing the capacity to distinguish art from ideology and artists from politics.

What's the alternative? Those who think that a core task of art is political instruction or moral uplift will wind up with some version of socialist realism or religious dogma. And those who think that the worth of art must be judged according to the moral and political commitments of its creator ultimately consign all art to the dustbin, since even the most avant-garde artists are creatures of their time.

For myself, I plan to add one or two of Handke's books to my shelf, at least the non-political ones. They'll sit alongside Pinter, Saramago, Grass and, of course, Dahl — writers to whom I will always feel grateful, not least because they did not choose politics as their vocation.

Bret Stephens has been an Opinion columnist with The Times
©2019TheNewYorkTimesNewsService

We need a new space law

EYE CULTURE

KUMAR ABISHEK

When Nasa landed its NEAR Shoemaker spacecraft on Asteroid 433 Eros in 2001, Gregory W Nemitz issued a $20 parking ticket to the American space agency, claiming the space rock was his private property and that he had submitted related documents with the California secretary of state. Nasa refused to pay, citing lack of legal status.

But was Nemitz wrong in his claim? According to Article II of the Outer Space Treaty of 1967, which has 109 parties to it and forms the basis of international space law, "Outer space, including the moon and other celestial bodies, is not subject to national appropriation by claim of sovereignty, by means of use or occupation, or by any other means." But the treaty is silent on individual ownership.

Recently, Elon Musk unveiled a SpaceX spacecraft — Starship — to transport passengers and cargo to the moon or Mars. Blue Origin of Jeff Bezos revealed its lunar lander plan in May and also tested a rocket for space tourism purposes. Others like them are also looking to invest in similar ideas.

So, if Musk succeeds in his plans to send humans to Mars and builds a station there later, would that patch on the red planet belong to all mankind or his SpaceX company? This query also applies to the moon.

Nothing on earth legally forbids an individual or a company from claiming a spot on the moon or Mars and building infrastructure there, but the Moon Treaty of 1979. This treaty bans ownership of any extraterrestrial property by any organisation or person unless that organisation is international and governmental. India is one of the only 11 signatories to this agreement and by default, an Indian may not be able to exploit the Outer Space Treaty's loophole. But Americans, Chinese, Japanese, and Russians can — their nations haven't signed the Moon Treaty.

There is renewed interest among space agencies to explore the far side of the moon after Chandrayaan I discovered water ice there. Earlier this year, China landed its rover on the far side, and India witnessed Vikram's hard-landing somewhere near its southern pole, with contact lost. Such missions were aimed at figuring out how well the moon could serve as settlement for future manned missions.

Asteroid mining is also being discussed; in April, Hayabusa2 from Japan bombed Ryugu asteroid and obtained a sample of its rock dust for return to earth; the robotic probe successfully touched down on its surface in July. In August, American President Donald Trump launched the US Space Command to defend the country's military satellites and other space assets.

The race for outer space real estate has already intensified. Whether we like it or not, this competition parallels the Colonial race — which was led by enterprising individuals and companies — and the dominant will set the rules of the game. Instead of hiding behind an outdated international treaty having numerous loopholes, we need to be ready for this fight.

Besides, the Outer Space Treaty is based on the Antarctic Treaty, which sets the frozen continent apart as a scientific preserve and forbids military activity. So far, the agreement has worked well to prevent discord, despite countries like New Zealand, Australia, Argentina, and Chile claiming parts of the continent. But without any opportunity to profit, there was hardly any commercial activity there. On the other hand, there is no such treaty for the Arctic Circle and we all know about commercial interests in that region.

"Space is indeed a new frontier calling for individualism rather than collectivism, and its challenges need to be addressed with a legal regime favourable to property rights... Given the abundance of extraterrestrial resources, it would be nonsensical to forbid their (industrialists and investors) private appropriation," argues Virgiliu Pop in his book *Who Owns the Moon?: Extraterrestrial Aspects of Land and Mineral Resources Ownership*. He had claimed ownership of the Sun to make a point about extraterrestrial property rights and suggested that the moon's status as common heritage would not last if lunar exploitations were to become any simpler.

He further says: "... space law demands an Olympian level of wisdom, and that attempts at addressing its challenges are not easier than hacking down a mountain with a blunt knife."

In a 2018 paper titled *Homesteading the Final Frontier: A Practical Proposal for Securing Property Rights in Space* by Rand Simberg of the Competitive Enterprise Institute, a think tank, says "the idea is that recognition is not necessarily appropriation", as it calls for legislation whereby the US would accept claims made by private entities, American and others, based on certain criteria. I want the United Nations to be that adjudicator.

We don't know how extraterrestrial real estate is going to work, but it's exciting that our generation could be the first to homestead the space. For that, we need a new, modified outer space law that promotes individualism and government-backed explorations, and avoids the ugliness of the Colonial era.

Is nostalgia marketing just repackaged memories?

YES, BUT...

SANDEEP GOYAL

Sunil Gavaskar is said to be considering the launch of a Legends' World Series with the blessings of the BCCI. The League will bring back the likes of Sachin Tendulkar, Virender Sehwag, Brian Lara, Brett Lee, Jonty Rhodes and Tillakaratne Dilshan to the cricketing crease. And many more of the retired tribe. But is the nostalgia marketing of veterans' cricket really all that compelling a proposition? Lots of Tendulkar fans and Sehwag diehards will surely queue up to see their heroes once again flick, cut, drive, pull, sweep and loft the red cherry out of the stadium. But will the 46-years old Tendulkar be able to recreate the magic of his youth? Will Sehwag at 41 have the same reflexes and agility as when he was half that age? Will a 50-years old Lara still be able to regale the crowd with his stroke-play?

Eight countries including Pakistan, Australia, New Zealand, England, South Africa, Sri Lanka, Canada and Wales participated in the 50-overs-a-side cricket Veterans World Cup last year in Sydney. The next edition will take place in Cape Town, South Africa in 2020 with the West Indies, India, Namibia and Zimbabwe joining the line-up. But from all accounts the Sydney tournament was at best a tepid affair ... with sparse attendance in stadiums, low television viewership and lukewarm sponsor response. Will Gavaskar's tournament be able to perform any better?

The repackaging and the restaging of these old heroes would come under the umbrella of nostalgia marketing. Nostalgia inspires fans to spend their money promising an immediate return in the form of happy memories. Immersing yourself in nostalgia is like wrapping yourself in a comfortable blanket of "the good old days". Nostalgia, research shows, can literally make people feel "warmer". But warmer for how long or how frequently?

Nostalgia marketing has worked pretty well in tennis and golf. The ATP Champions Tour for former tennis professionals has brought together many of the greatest tennis players in history, getting the likes of John McEnroe, Björn Borg, Pete Sampras, Ivan Lendl and Jimmy Connors to continue entertaining fans much beyond their prime, encashing years of accumulated brand equity and sporting goodwill. Similarly, the PGA Tour Champions is a men's professional senior golf tour which is very popular in the US. Even Jack Nicklaus joined the Tour when he became eligible in January 1990, and by April 1996 had won 10 tournaments, including eight major championships, further buttressing his reputation as a golfing legend, and keeping his fandom alive, entertained and involved.

This last week has seen an announcement from Bajaj that they are reviving and bringing back the old warhorse, the Chetak scooter. Albeit as an electric vehicle. The Chetak brand was introduced in 1972, and ruled Indian roads for nearly 25 years. It was in fact the hero of the "Hamara Bajaj" campaign. Unfortunately, the Chetak started to taper off, and was eventually discontinued in 2006. Why has Bajaj decided to dust the cobwebs and give the Chetak a new avatar? Perhaps because it believes that the brand still has deep reservoirs of consumer goodwill ... recognition and recall superior to a new entrant.

About a year back, Mahindra did something similar. They relaunched the Jawa motorcycle. The Czech brand was originally introduced to India after World War-II. Local production was started in 1961 by a company called Ideal Jawa. The brand was discontinued in 1971 when Ideal Jawa started making motorcycles under the Yezdi brandname. The company stopped production in 1998 faced with dwindling demand and poor financials. Last year, Classic Legends, a Mahindra entity signed a brand licensing agreement with the Czech Republic-based Jawa Moto to revive the brand in India. The relaunch in November last year has seen a few stores being opened, but there is no visible excitement surrounding Jawa as such.

This is in contrast to the kind of frenzy witnessed when the Royal Enfield was brought back in the 1990s. Though often tagged as "the oldest global motorcycle brand in continuous production", the Enfield, a brand of Redditch UK, had kind of sputtered and nearly stopped about 25 years ago till Eicher stepped in to revive its fortunes. So successful has been the re-launch of the Royal Enfield that in 2015 it surpassed the global sales of Harley-Davidson, and today sells in over 50 countries.

Revivals have happened with the likes of fast-food brand Nirula's and milk-shakes vendor Keventers too. Keventers especially has done really well with nearly 250 stores nation-wide. There has been talk too of bringing back Campa Cola.

Nostalgia works when the brand itself has intrinsic goodness and a proposition that is seen to have enduring customer value. Just the repackaging of old, and fond, memories of the past in a more contemporary framework may not work. Which is why Gavaskar will have to ensure the focus of his league is good and entertaining cricket, not just legends on show.

Sandeep Goyal is an advertising and media veteran.
sandeep@goyalmail.com

NOTES FROM A SCHOOL ON THE HILL

CRANKY CUSTOMER

PRIYA RAMANI

INSTAGRAM@IMSABBAH

Students of Haji Public School.

The good news is, Fanny is pregnant and due next month. "She seems quite miffed I didn't tell you over the phone," Sabbah Haji texts me just after I finish chatting with her on the phone.

The 37-year-old founder of the family-run Haji Public School, in the distant Himalayan village of Breswana in Jammu and Kashmir's (J&K) Doda district, has the most brilliant long-running story—think James Herriot meets Heidi over cups of *nunchai* (salted tea)—on the Indian internet.

"When our internet is killed, don't forget we're still in here." Haji tweeted this on 3 August, two days before the government disabled the internet in Kashmir and announced it was withdrawing the special status of J&K, guaranteed for more than 65 years under Article 370 of the Constitution. "That's when things will go from bad to worse. And that's when we'll need some spine from the outside," she said in another tweet. I called her on Day 70 to tell her we hadn't forgotten Kashmir.

Haji has since lost hope that the rest of the country cares about what's happening in Kashmir. Her own civil disobedience, she says, has been to keep the school running every day these past two months despite government orders.

The prolific social media user and wickedly humorous "Chenab *ki churail*", as her Twitter bio describes her, brings alive her picture-book village school, located, as she is fond of saying, in the "most beautiful corner of the world", with photographs, videos and stories on Twitter, Facebook, Instagram and Tumblr.

Fanny is one of the stars in this real-life fairy tale. Last December, Haji's brown cocker spaniel was attacked by a leopard and we were there, courtesy a series of 23 tweets. "She let me close and, good Lord. So much blood. Slashed deep across back of neck, deep bite and claw marks in throat, several deep lacerations across body. This is now around 11 PM. No one at home but me. Also, this is the village and it's winter where everyone is fast asleep by 9 PM. Or homes are far enough away that cannot call anyone," Haji tweeted from her handle, @imsabbah.

The next morning the villagers came early to help. Fanny got 50 stitches and was driven to the vet, hours away. Miraculously, she survived.

But this story really began when Haji returned to her village after living in Dubai and Bengaluru and realized that decades of militancy and state apathy had ensured that nearly two generations of villagers had no education.

In 2009, she set up a school in two rooms of her home. Ten years later, Haji Public School's more than 500 students come from 30-plus surrounding villages. The children who joined kindergarten when the school first started will appear for the class X board examinations this year.

By 2011, Haji was shooting pictures on a digital camera and posting them online every time she visited Jammu—a whole day's travel by road, foot and horseback—in the hope that it would encourage volunteers to apply to work at the school. By the end of 2016, she finally had internet at home.

That day, 5 August, was a normal school day. "All the teachers were restless. The children could sense it. They had been keyed up from home when they discovered the internet and phones were dead that morning," she says.

Kashmir is no stranger to internet shutdowns—there have been 176 over the past eight years, including a six-month blackout in 2016, according to online tracker Internet Shutdowns—but something was different this time, and Haji knew that when she tweeted in early August.

"I kept going down to the TV room to check what announcement was going to be made at 11. And then it came. That fictional stuff you hear about a roar in your ears and noise in your brain? It's not made up after all.... And then we had to go back to class and the kids could sense something was very wrong. So they were tense as well.... Now Day 70, and it's still incredible."

Up at 7,500ft, the machinations of the real world don't penetrate the lives of the apolitical villagers who are focused, as always, on the business of survival. It's that time of year when the harvest season is done, the vegetables and fruits have been sun-dried and preserved for the months to come, and the final grass harvest was completed a couple of weeks ago.

"During this time, the villagers walk with sickles on their belts and heavy loads of hay and corn on their back as they zigzag the mountains. It's 40 days of very hard work, and the village does this turn-by-turn for every household. There are big mountains of corn and hay everywhere that should last till March-April for animal fodder." says Haji. "It's that time of year I would post a picture of my 40-kilo aunt carrying a 30kg load on her back."

Haji lost a foal to a snakebite three days ago, and, yes, a leopard with three cubs was spotted sauntering behind the school at sunset. It's time to keep an eye on the dogs again.

Stories from the Kashmir valley—well-attended protests, empty ATMs, the proliferation of army checkpoints that are a throwback to the 1990s and the daily humiliations and tragedies of friends and family—do get through. Haji has a lot of questions for the rest of India: "Where are the elected leaders? Why is everyone in jail, in solitary, not allowed to talk? What are you celebrating? Why isn't the press doing its job? What kind of farce is ongoing?"

"In Breswana, a man died but all his family was outside and nobody could be contacted. So we buried a man without any family," says Haji. "I am sure that's happening across Kashmir."

Haji says she doesn't want to impose her politics on the families who send their children to her school but she can't help but see the irony in teaching the civil disobedience movement in her history class. The teachers have been writing open letters to media organizations. "And since we have been telling the kids how we are writing to all and sundry, they have constructed a big post box at school—red and black and beautiful—where they will post letters and then it will be on us to forward them. So far they want to write to Malala (Yousafzai), Greta (Thunberg) and the UN, apart from all the teachers who have been here," says Haji. "We have a Kashmir shutdown counter running at school."

Meanwhile, final exams start the day after we speak. Baby Sports Day (kindergarten to class II) and Junior Sports Day (classes III to V) were held last month. "I wish you could see the pictures. And they can't run in straight lines, good grief. The number of track disqualifications," says Haji. "House Gondor won. Champions were Mufeeda Banoo, Yasir Mushtaq, Aqib Lohar, Nadiya Batt. Abdul Kariem of class IV got a special prize for best sportsmanship when he went around consoling sobbing kids who didn't pass the baton cleanly in the relay races."

The sheep and goats have just come back down from the higher meadows where they grazed all summer, Haji texts me a couple of days after our conversation. "The dogs are going crazy. The herd will now settle on one field for a few days—their bodies warm up the earth and their manure is super good for the next sowing." They'll move through all the fields in the coming weeks before the winter crop of wheat is planted.

Last December, Haji shared some pictures of Fanny undergoing treatment on Facebook with this caption: "Fanny's game face. Bring it. Learn from Fanny, be like Fanny. Fanny is a champion. Please send in prayers BECAUSE THEY WORK." One year later, it's Kashmir that needs our prayers and a miracle.

Priya Ramani shares what's making her feel angsty/agreeable.

@priyaramani

CLIMATE CHANGE TRACKER

BIBEK BHATTACHARYA

THIS WEEK: Protecting the Himalaya

ALAMY

The Valley of Flowers is one of 135 Indian Himalayan protected areas.

Best-laid plans

In last week's column, we looked at the effects of a rapidly warming climate on melting Himalayan glaciers and the dire effects that is having on high-altitude forests and animals. They will be endangered in a matter of decades. Since near-term climate change predictions are made for 2050, the time to protect glaciers is probably already past. But what of that familiar and beloved Himalayan landscape of rhododendron groves, burrowing pikas, sweeping griffons and valleys full of wildflower blooms?

The landmark *Hindu Kush Himalaya (HKH) Assessment Report* from the International Centre for Integrated Mountain Development (Icimod), which was published in February, has some suggestions. Of the eight Asian countries that are part of Icimod, China and India account for the largest numbers of protected areas (PAs), 221 and 135, respectively. In India, the cumulative area under PAs is 62,417 sq. km, including such important areas as the Nanda Devi National Park in Uttarakhand and the Khangchendzonga National Park in Sikkim.

Given the very nature of the HKH region, trans-boundary international cooperation is key. There are some good examples of this, including two Icimod programmes. One is the Kailash Sacred Landscape Conservation and Development Initiative (KSLCDI), a regional cooperation framework between India, Nepal and China. Its job is to establish mechanisms for cross-border cooperation to protect connected ecosystems, reduce threats to biodiversity and improve livelihoods. The KSLCDI, which began in 2012, covers 31,252 sq. km, an altitude range of 390-7,694m and 14 major watersheds. There's a similar Khangchendzonga Landscape Conservation and Development Initiative (KLCDI) between India, Bhutan and Nepal in the Eastern Himalaya.

The HKH assessment report advises member countries to closely monitor changes within PAs, so that conservation policies adapt to changing needs and pressures. According to the report, we will be better equipped to save our biodiversity by integrating Himalayan peoples and their knowledge and tradition systems.

In next week's column we discuss Diwali and air quality. Follow the series with #MintClimateTracker.

Just a pinch and not more

Salt is life, but gets a bad rap because we consume far more of it than what our bodies actually need

Vasudha Rai

Himalayan pink salt is good but it is often adulterated. ALAMY

The World Athletics Championships in Doha (27 September-6 October) saw many firsts. The games were held at the Khalid International Stadium, an open-air structure that was miraculously air-conditioned. But though almost all the events took place within this structure, the marathon runners had to traverse the 7km course outside the stadium for six laps. The race started 1 minute before midnight, when the temperature had cooled to a relatively bearable 32 degrees Celsius. While it was marketed as the first midnight marathon, this was done for the health and safety of the athletes, to protect them from the loss of a precious mineral: salt.

JUST A FEW GRAINS

Salt has got a rap over the years, and with good reason. Not because it is bad, but because we consume far more than the required amount. The World Health Organization (WHO) recommends 5g a day, which is less than a teaspoon. Shonali Sabherwal, Mumbai-based macrobiotic nutritionist, chef and author of *The Detox Diet,* says we actually need just a pinch. Lovneet Batra, a Delhi-based sports nutritionist who has consulted with Indian teams for the Commonwealth Games, says the quantity shouldn't exceed more than a teaspoon every day. Still, it is common to have several teaspoons on a daily basis.

"You will be surprised to know that 70% of your salt consumption isn't even from meals—you get it from bakery goods, cured meats, in fact any packaged food contains salt as it is the best preservative," says Batra.

Yet salt is absolutely essential for humans. "Whether it is muscle contraction or relaxation, or the communication between two neurons, salt is the prime electrolyte for this function," explains Batra. If sodium levels drop drastically, she says, it can be fatal. But when taken in excessive quantities, it increases water retention in the body, in turn leading to high blood pressure. "If you have high BP, then you have to go even lower in terms of salt consumption; your upper limit will be half a teaspoon," says Batra.

SALT RECIPES

Lovneet Batra shares two must-haves for the season

CHARGED WORKOUT WATER

▶ 500ml of fresh fruit juice, 500ml of water and a pinch of salt.

▶ "If you work out for an hour or two every day, this is the best drink for you."

THE ANTI-POLLUTION MIX

▶ 30ml *amla* (Indian gooseberry) juice, 5ml ginger, a pinch of Himalayan salt, 1 tsp jaggery.

▶ "This is great for those with respiratory problems. Drink first thing in the morning on an empty stomach."

TOXIC LOAD

Like every other food these days, salt too isn't immune to adulteration. "Most of us use commercial salt, which is full of sodium chloride, stripped of minerals and packed with anti-caking ingredients to ensure the salt flows easily," says Sabherwal. She adds that commercial salt isn't edible any more. "It is like dairy—thoroughly contaminated."

Naturally, this has led to people looking for healthier, more natural versions. "In macrobiotics, we look at sea salt because the minerals are retained and it is less processed," says Sabherwal.

The medicinal system of Ayurveda, however, has a different take on it.

"There are mainly five varieties of salt in Ayurveda," says Abhijit Jinde, a Pune-based Ayurvedic physician. "Out of these five, rock/Himalayan pink salt or *saindha namak* is the best, while sea salt is supposed to be bad for the system." Jinde explains that according to Ayurveda, sea salt produces a lot of *kapha* (earth and water elements) and *pitta* (fire element) in the body, which leads to water retention. He says it leads to too much secretion in the system, which causes water imbalance, in turn leading to conditions such as high blood pressure. "Plus, it is excessively heating."

But he warns of the adulteration in pink salt: "Black salt becomes pink after grinding but rock salt is pink in crystals and white when ground." So if your Himalayan salt is too pink, it could be black salt.

"Ayurveda doesn't encourage adding salt over food," says Jinde. "The cooking process helps it make the food more digestible, therefore adding it on top after cooking won't enhance the digestibility of food—it is just like eating salt without any benefits."

THE IODINE CONNECTION

Even though natural salt is gaining popularity, many people still stick to the table variety because it is fortified with iodine. "You need 150 micrograms of iodine a month which is half to three-fourths a tablespoon of commercial salt iodine," says Sabherwal. She says you can choose iodine-fortified pink salt or get it from sea vegetables, which have a high concentration of iodine. "You can also take spirulina for iodine—start with half a teaspoon and then a full teaspoon mixed in a glass of water every day."

Opinion

SATURDAY, OCTOBER 19, 2019

AGREE TO DISAGREE

Union commerce minister Piyush Goyal

"I'm proud that an Indian has got the Nobel prize, but it's not necessary that I should agree with his ideas. Especially, when the people of this country rejected his suggestion"

CUCET is a good start, but India needs a SAT

Just 15 central universities have opted for the common entrance test, all need to get on board

THE NATIONAL TESTING Agency (NTA) conducting a common entrance test, the Central Universities Common Entrance Test (CUCET), for 50 undergraduate, 170 postgraduate, and over 100 MPhil and PhD courses at 15 central universities is undoubtedly a significant step forward for improving the higher education ecosystem in the country, but is it big enough? As per the All India Survey of Higher Education 2018-19, there are 46 central universities in the country; thus, just a third are using CUCET for their admissions. None of the top-billed central universities—Delhi University (DU), Jawaharlal Nehru University (JNU), Banaras Hindu University (BHU), etc—are part of the CUCET cohort. DU still admits students on the basis of senior secondary scores, while JNU and BHU have their own entrance tests with a minimum qualifying mark for applicants. DU did start a common entrance test for admissions into undergraduate English (Hons) courses offered by its colleges in 2009, but scrapped it three years later as colleges opted out.

The higher education education needs all 598 public-funded universities, with the state coming on board, to have a common entrance test, quite like the SAT for college admissions in the US. The reliance on senior secondary marks by top universities offers a perverse incentive for senior secondary education boards—those of the states, and central ones like CBSE—to inflate students' scores. Indeed, this "moderation policy" has become quasi-official. Though CBSE and 32 other boards had worked towards a consensus to scrap moderation of class XII scores, CBSE later said that it would do this only if other boards did it too. But, the fact is the number of students scoring very high in the XII CBSE exams has been rising over the years—17,690 students scored 95% or more this year, a 40% increase over 2018. Thanks to the inflated scores, the college cut-offs have soared to vertiginous levels, with those in leading colleges going up by 0.25-1 percentage points every year. Apart from the rat race, both among boards and students, that this has led to, it has also meant that the true level of a candidate's merit doesn't get established—boards that follow a generous moderation policy manage to push their students into top universities. A common entrance test would, thus, ensure that boards that have very lenient marking systems, or are plagued by widespread cheating are unable to corner a large number of the seats in a DU. It will also be an improvement over individual university tests—not just for students who can avoid multiple applications' costs and sitting for multiple entrance tests but also for universities by allowing them to choose from a wider pool of students. How students choose will also help temper college/university rankings, and fine-tune the National Ranking Framework. This will spur competition amongst universities to attract top talent.

To be sure, a standardised test, in the initial years, would have to negotiate the disparities between curricula across senior secondary education boards. But, in the long run, it will help the curricula evolve towards a median in terms of course content for core subjects; of course, the regional language and regional history bits will have to be dealt with by the state universities. To start with, all central universities should be roped in for CUCET, and then state universities—and even private universities, perhaps—can join the bandwagon. The University Grants Commission, or its successor, must take a cue from the fact that the technological education regulator, Medical Council of India and the CLAT consortium have managed to get colleges to agree to their respective common admission tests.

A vote for rigging

Chhattisgarh's anti-EVM plan for local govt polls hurts democracy

THE OPPOSITION PARTIES at the central level have routinely questioned electronic voting machines' (EVMs') immunity to tampering without offering irrefutable evidence—to be sure, the Aam Aadmi Party demonstrated how an EVM could be hacked, but that was not an EVM from the stables of the Election Commission of India (ECI). Though the Congress party maintained that senior party leader Kapil Sibal attended a London press-meet to demonstrate how an EVM could be hacked in his personal capacity, the fact is that a senior Congress leader did lend his heft to unsubstantiated claims about the EVM's safety. It put the ECI's non-partisanship, that is crucial to the exercise of democracy in India, under a cloud. But, all this pales in front of the Chhattisgarh government mulling over a state Cabinet sub-committee recommendation to revert to paper ballots in local-body elections. A government eying EVMs with suspicion, sans evidence of tampering, is no garden-variety damning of EVMs—an official statement of lack of trust in the machines will have much wider repercussions.

It is for the state election commission to take the final call on use of EVMs in local body elections. But, the fact is that paper ballots make it far easier to capture booths and rig elections, as the West Bengal panchayat elections last year showed. Indeed, re-polling was ordered in 568 booths in the state following reports of ballot boxes being filled by political workers rather than by voters, widespread violence and incidents of vandalism. EVMs may not help where there is vandalism and violence, but they are at least not as easy to rig as the paper ballot system is. The ECI has taken concrete steps to demonstrate the security of the EVM system. As per various news reports, in June 2017, the ECI arranged for an EVM-hack challenge where political parties were asked to demonstrate how the machines can be tampered with. Just two parties—Nationalist Congress Party and Communist Party of India (Marxist)—turned up, and even they did not participate. ECI has also made it mandatory for every EVM to have Voter-Verifiable Paper Audit Trail (VVPAT), to ensure there is no tampering. Even the Supreme Court allowed for wider VVPAT verification before the general election earlier this year to assuage concerns about EVM security. Of course, many things affect the citizen's confidence in the exercise of democratic choice in India. Voter fraud happens in many forms, from addition of bogus voters to the rolls to deletion of genuine ones. But, this is a problem that can be taken care of by linking Aadhaar to voter IDs, as this paper has argued. However, if there is an official retreat from the EVM system, as Chhattisgarh seems giving serious thought to, it will severely damage public trust in the democratic process in India without a shred of evidence. That will pave the path for the bad old days of paper-ballot-facilitated rigging to make a comeback as demands for this to be extended to all levels will be buoyed by the Chhattisgarh example.

TacklingTB

For India, the focus has to be on curbing the incidence of TB cases going unreported if MDR TB is to be defeated

THE WHO'S *GLOBAL TB Report, 2019*, pegs the persons with TB at 10 million in 2018. The report states that just eight countries account for two-thirds of the total TB burden; India accounts for the highest number (27%) of cases. One of the biggest threats to public health has been multiple drug-resistant TB (MDR-TB). In 2018, nearly half a million cases of rifampicin-resistant TB (RR-TB) were reported, of which 78% had MDR-TB. The report attributes the significant treatment success rate for new cases of TB—85% in 2017, up 81% from 2016—to the progress made in India.

India's TB burden may have declined from 27.4 lakh in 2017 to 26.9 lakh in 2018, but MDR/RR-TB remain big concerns. Globally, there were 484,000 incident cases of MDR/RR-TB, India accounted for ~50%. However, India has enhanced its registration, and saw notifications double to two million in 2018. But TB going unreported is a key issue—WHO estimates such cases to be 540,000. The good news is that RR-TB notification in India increased from 32% in 2017 to 46% in 2018 because of mandatory testing for resistance. With WHO's recommendations and its own methods of tackling TB, the health ministry has also launched an oral drug regiment for TB patients. Under Nikshya Poshan Yojana it provides direct benefit transfers to TB patients for nutritional support. The private sector registered 40% more cases than last year marking significant strides in public-private engagement in tackling TB. India still has a long way to go, though, before it becomes a TB-free country.

CHLOROPHILE

SEED-TECH COMPANIES ARE LOOKING TO CHARGE FARMERS ON THE BASIS OF CROP OUTCOMES RATHER THAN THE FARM INPUTS THEY PROVIDE

Betting on the harvest

VIVIAN FERNANDES

Author blogs at smartindianagriculture.com

Views are personal

CAN COMPANIES ENGAGED in the seeds and crop protection businesses charge farmers for outcomes? Liam Condon, member of Bayer's Management Board and president of its Crop Science Division, said advances in digital technology have enabled such a business model. The company will make a recommendation, and guarantee the outcome. If the yield falls short, the grower gets a discount on the prices they paid for inputs. If it exceeds, the company gets a share of the upside. "We are trialling this in the US; we are taking out some of the risk," Condon said.

Advances in computing and communications technology collects and processes metre-by-metre field-level data thrown up by sensors attached to farm equipment. Crop yield is influenced by the genetic traits of seeds, as also by factors like composition of the soil, organic matter, presence of beneficial microbes, moisture, temperature, nutrients, and crop protection measures. Machines can analyse this and create customised agronomic plans. The data can also help in evaluating the performance of different seeds.

"We are on track for (receiving data) from 90 million paid acres—using digital farming tools— globally by the end of 2019," said Sam Eathington, Chief Science Officer of The Climate Corporation, which became part of Bayer as it acquired Monsanto in 2018

Based on weather and soil data from 2009 onwards, Climate Corp has developed a model that predicts the performance of various corn hybrids. After being validated with customer information from about four million acres, it was tested on 20,000 acres of a US maize farmer in 2018. The hybrids recommended by the seed advisory yielded six bushels (152.4 kg) more per acre over those the farmer chose. This year, the experiment was extended to 17 maize farmers and 100,000 acres across three states in the US midwest. There was a gain of over nine bushels (228.6 kg) per acre.

I got a peek into this future at a Bayer event in Germany, to which the company invited me at its expense.

Bayer said it would reduce the environmental impact of its products by 30% by developing crop protection products that have a lower volume of active ingredients, and can be applied precisely. It would cut down earth-warming emissions by 30% from fields under the most-emitting crops in the regions that it serves, and make 'sustainable' technologies available to 100 million small-holder farmers by 2030.

Sustainability is a political compulsion. Unlike the US, Europe has a strong environmental movement. In European Parliament elections in May, the Greens, fighting on issues of climate change and an economy based on renewable energy, came second. In a subsequent opinion poll they did even better.

"We have basic EU rules, but over EU, we have more rules," says Bernhard Barkmann, who rears pigs and beef bulls on a 50-hectare farm dating back to 1553 in Lower Saxony, about 20 km from the Dutch border. He finds farming regulations and animal welfare rules quite onerous, and has taken to blogging to influence government policy.

Nadine Henke, a veterinary doctor who rears piglets for sale—42,000 a year—on her family farm of 20 hectares in Lower Saxony says "we have a lot of discussion in Germany about castration of pigs, tail docking, and sows in cages. The rules affect me."

Bernd Olligs, a sixth generation farmer who grows wheat, barley, oilseed rape, potato, and sugar beet on 360 hectares at Damianshof, about 35 km north of Cologne, says he gets ₹1,500 ($1,650) per hectare of flowering strips from the government. "We have been told to plant hedges that promote biodiversity, but we need research on the species that flower the best and attracts the most beneficial insects," he said. A neighbouring farm had an 'insect hotel'—a tin-roofed wire mesh enclosure, with small logs and hollow stems, for bees and bugs to nestle in.

Sustainability is also a commercial necessity. Change in weather patterns requires crops to be resilient. Yields must increase to feed a growing population with lesser resources. Farming practices are under increased scrutiny from regulators, as is the chemistry of plants protection products.

Some of Bayer's sustainability commitments will be met through business as usual. The company is betting big on glyphosate, Monsanto's weedkiller, sold as Roundup. The company has lost three US lawsuits, which allege that the herbicide causes cancer and it hid the information. Since June last year, it has lost $40 billion in market cap, which is 60% of the price it paid for Monsanto. It believes it will win on appeal, and takes heart from the US Environment Protection Agency not agreeing to a demand for a cancer warning label.

> **Machines can analyse data on genetic traits contained in seeds, soil and environment, and crop protection measures to predict performance of seeds**

To emphasise its sustainability credentials, Bayer cites its glyphosate-tolerant, and borer-resistant soybean planted on 73 million hectares in Latin America, which, it says, has yielded 20 million tonnes more per year by preventing yield losses through weed control. Higher yield has resulted in lesser loss of rainforest, and an annual saving of 20 million litres of water.

Herbicides also make possible conservation agriculture, where fields are not ploughed, and seeds are planted with drills through the residue of the previous crop left to rot in fields. The tractor use averted by the use of herbicide-tolerant soybean in LatAm has resulted in lesser emissions, equivalent to keeping three million cars off the road annually, the company says. No-till agriculture conserves soil moisture, enriches it with organic matter, and enables microbes to thrive.

Another farming practice that does not require the company to break much of a sweat to achieve its sustainability goals is direct-seeded rice. This method of rice cultivation does not require paddies to be flooded. It averts the emission of methane, which is more earth-warming than carbon-dioxide. But, it requires herbicides to control weeds. (Incidentally, the Indian Agricultural Research Institute is trialling three strains of Pusa Basmati 1121 and 1509 that had been made tolerant to sulphonylurea herbicides through conventional breeding). Seeds designed for DSR will also have to be developed.

Mathias Berninger, the company's head of public affairs and sustainability (and a former Green Party politician), said a sustainability council with outside members would be set up to review compliance annually. He cited a proprietary pesticide against citrus-plant-sucking pests which has 70% less active ingredient. The Environment Impact Quotient developed by Cornell University would be used to measure how benign or otherwise a crop protection product is.

Robert Reiter, Head of Crop Science R&D, said synthetic biology could help craft plants like maize to behave like legumes, and store atmospheric nitrogen in root nodules. He said the company was investing in biological alternatives to chemicals for pest and disease control, and cited a third-party patented product (which Bayer distributes) that combats pests by disrupting cell function and feeding activity. The active ingredient of this insecticide is a by-product of extra-virgin oil. He mentioned another fungicide, whose active ingredient is a strain of the bacterium *Bacillus subtilis*, which stimulates a plant's natural defences. A novel approach to management of resistance (in weeds and bugs) is RNA Interference technology, which can silence undesirable genes in a targeted way. To some, high-tech developments in agriculture are a cause of dismay. The innovations cost a lot of money, and the companies will recover it from farmers, says Miguel Altieri, Professor of Agroecology at the University of California, Berkeley. They would make farmers more dependent on the corporations, not less. There were traditional systems of agriculture that have stood the test of time, and are resilient and sustainable. "When you look at the total output (of eggs, milk, vegetables), and not just the yield from one crop, you will see that small farms are more productive than large farms," said Altieri, keeping the sustainability debate open.

Boris is trumpeting a fake success

Johnson's Brexit deal is a solution that has been available for months, but dismissed. The UK was taken to the brink and back solely for Johnsons's thirst for power

FERDINANDO GIUGLIANO

Bloomberg

THE DEAL BORIS Johnson has struck with the rest of the European Union over Britain's withdrawal follows a familiar pattern. Much like other populist politicians in Europe, the British prime minister is trumpeting a false success. The same agreement could have been reached nearly two years ago at a lower economic cost.

He is now in the same class as Alexis Tsipras, Luigi Di Maio and Matteo Salvini (the leaders of Greece's Syriza party, Italy's Five Star Movement, and Italy's League). They also took their countries to the brink and back for no good reason except their thirst for power.

The UK-EU withdrawal agreement has scrapped the controversial "backstop" arrangement, which Johnson feared would have kept Britain in a customs union with the EU indefinitely. In doing so, however, it has tied Northern Ireland to the EU's tariffs and customs rules, which is the only way to ensure there is no physical border with Ireland (something Dublin would not have accepted for reasons of peace).

This solution had always been available, but for months it was dismissed by Brexiters as an insult to the UK. A year ago, Johnson described an arrangement that would imply custom controls in the Irish Sea as "little short of an attempt to annex Northern Ireland." He is now signing up to it.

The prime minister's defenders will point to concessions from the EU, including a complex mechanism whereby the Northern Ireland assembly can vote to quit the customs arrangement. But, this scheme is unlikely to ever be used, and appears trivial next to Johnson's acceptance of a de facto border in the Irish Sea. The arrangement has also enraged his ruling Conservative Party's allies, the Democratic Unionist Party, making it far from certain that the House of Commons will support the deal.

Johnson can take comfort, at least, that he is not the first leader to make such an embarrassing U-turn with the EU. Tsipras, Greece's former prime minister, stormed to electoral victory in 2015 by promising to renegotiate the terms of his country's rescue program. He even called and won a referendum demanding essentially the same. Only a few weeks later, he crumbled. Greece agreed pretty much to the conditions that were always on the table.

Italy has suffered similarly. The Five Star-League coalition agreed a governing program that would have broken EU budget rules. They then settled for a more modest increase in borrowing, which still proved unpalatable to the rest of the bloc. In the end, the prime minister Giuseppe Conte had to accept a deficit target of 2% of gross domestic product, which Italy could have agreed to months before. The populists' consolation was being able to brag that the new agreed target was actually 2.04% percent; a very big win indeed.

This all makes a mockery of democracy and popular mandates. The populists get elected by promising—in Johnson's famous words—that they can "have their cake and eat it" when dealing with Brussels. Then they come back hungry.

They cause serious economic damage in the process. The negotiations with the EU have weighed heavily on the UK economy and investment. Italy's borrowing costs for a 10-year bond shot up to more than 3.5% under the League and Five Star (they're below 1% now). Greece plummeted into a self-inflicted recession and its central bank was forced to impose capital controls.

The important question for the future of Europe is whether such behaviour is rewarded or punished by voters. The evidence is mixed. In Greece, Syriza was booted out of power but remains a force. In Italy, Salvini still rides high in the polls, though Five Star has taken a battering. In Britain, the Conservatives are leading in the polls, although that is not much to brag about when the Labour Party under Jeremy Corbyn is your opposition.

It is too soon to say that Europe's populist rulers will self-destruct. But, the damage they have inflicted on their countries is all too evident.

This column does not necessarily reflect the opinion of the editorial board or Bloomberg LP and its owners

LETTERS TO THE EDITOR

Ensuring digital systems

A high tax-levy on e-commerce firms with a significant presence is welcome in an ecosystem which promises a sustainable revenue growth, and a decent market share for players. However, besides a significant-presence, a differential-framework should also factor into account, the nature of the service/product, profitability, CSR initiatives, etc. Fintechs should be encouraged to develop the necessary infrastructure, and gain a wider outreach first. The market is still defined by cyber-insurers, who struggle to generate sustainable revenues. To promote digitisation, it is necessary that business-friendly norms are established and software vendors are encouraged to collaborate with cyber-insurers. Advanced digital systems call for a higher maintenance-cost in the longer run. A higher cost-benefit requires a wider-acceptance by consumers, incentives for vendors, and a higher risk-appetite to explore new avenues. Sound technical solutions are a must to promote cohesiveness among users, vendors and authorities. With increasing focus on implementation of AI/Robotics and 5G-enabled technologies while designing products/services, it is prudent to measure risks and focus on pertinent solutions. In a vast geography, user awareness for optimal exploitation of features and willingness to pay for benefits, is equally important before the cost of rendering technology is increased.

— Girish Lalwani, Delhi

●Write to us at feletters@expressindia.com

R.N.I. Reg. No. 6188/61 Printed for the proprietors, The Indian Express (P) Ltd by Vaidehi Chintaman Thakar at The Indian Express (P) Ltd Press, Plot No. EL-208, TTC Industrial Area, Mahape, Navi Mumbai-400 710 and published from Express Towers, Nariman Point, Mumbai-400 021. Editorial & Administrative Offices: Express Towers, Nariman Point, Mumbai-400 021. Phone: 22022627/67440000. Fax: 022-22856323.
Chairman of the Board: Viveck Goenka, Managing Editor: Sunil Jain, Resident Editor: Malini Bhupta* (*Responsible for selection of news under PRB Act) © Copyright: The Indian Express (P) Ltd. All rights reserved. Reproduction in any manner, electronic or otherwise, in whole or in part, without prior written permission is prohibited. The Financial Express®

epaper.financialexpress.com

NOT SO GREEN

Greta accuses rich nations of "creative carbon accounting"

When it comes to measuring national emissions, she has a point

IT IS 5AM, and New Covent Garden Market is in full swing. On its swarming 57-acre site in Battersea wholesalers are flogging fruit, vegetables and flowers to London's greengrocers and restaurateurs. Costa Rican pineapples are stacked next to Kenyan passion fruits and Peruvian asparagus. Rows of Danish conifers sit by buckets of Dutch roses. Fresh produce shipped from all around the world is for sale.

But what is a boon to chefs—and apologetic spouses—has become a mind-bending problem for politicians and regulators. Under mounting public pressure they are busy setting targets to limit their carbon emissions. At least 60 countries and over 100 cities have promised to get to "net zero". The trouble is that few account fully for the emissions created by products that are consumed within their borders but produced outside them.

Take, for example, a bunch of those Dutch roses. Britain's "net-zero" target for its carbon impact includes only domestic emissions—the lorry trip carrying them on British soil, and so on. These carbon-dioxide emissions are trivial in comparison to the 30kg or so from heating greenhouses in the Netherlands and flying the roses to Britain. Through a production lens, Britain looks relatively virtuous. Through a consumption lens, it does not.

Flowers are just one tiny part of the equation. Across the rich world the overall measurement gap is huge, particularly for service-oriented economies. Britain consumes about 40% more carbon emissions than it produces; the European Union as a whole, 19%. In America the difference comes in at 8%, according to the Global Carbon Project (gcp), a network of scientists. As for big cities, the gap between the two gauges of their carbon trail is bigger still, at about three-fifths, using the average figure for 79 cities reviewed by an international group of researchers. The problem even extends to individual buildings, which owners sometimes declare to be "carbon-neutral" while ignoring the concrete and steel used to build them.

Inevitably, since production-based measures make rich countries look good (they also flatter small states that do little manufacturing), most have picked this methodology for their carbon targets. None of the 19 countries in the Carbon Neutrality Coalition have net-zero targets that explicitly aim to reduce consumption (carbon footprints are considered in another part of France's legislation). Likewise New York's net-zero target is production-based—helpful, since it is a state without much heavy industry. It is for this reason, among others, that Greta Thunberg, a teenage climate activist, told Britain's Parliament in April that its climate goals amounted to little more than "creative carbon accounting".

The gap between national consumption and production measures comes from the emissions that are embedded in cross-border trade. Such emissions make up a quarter of the global total. Scientists began to pay more attention to them as China became a manufacturing powerhouse following its entry into the World Trade Organisation in 2001. Its factories were powered by coal, the fossil fuel that emits the most carbon per unit of energy.

By 2009 China had become the world's largest carbon emitter. Its exports alone now account for about 5% of the world's fossil-fuel emissions. Most of this relates to goods that are ultimately consumed in the developed world: two-thirds of China's emissions exports go to members of the oecd, a rich-country club. India and Russia are sizeable carbon exporters, too. (Saudi Arabia is not a big emissions exporter because both production and consumption statistics book the emissions from oil in the country where it is burned rather than extracted.)

Cutting trade-related emissions is a daunting task. Cross-border supply chains are often complex, and making goods closer to home may not actually improve matters. The problem can be split into three parts: what is imported, where it comes from and how it travels.

The imports that embed the highest carbon emissions are mostly industrial materials (iron, steel and chemicals) and consumer goods (cars, electronics and textiles). According to the Global Trade Analysis Project, a database maintained by Purdue University, these six products account for about 30% of trade-related emissions. But the CO2 released by the same item produced in two different countries can differ hugely, depending on how energy-efficient production is and how the countries make their electricity.

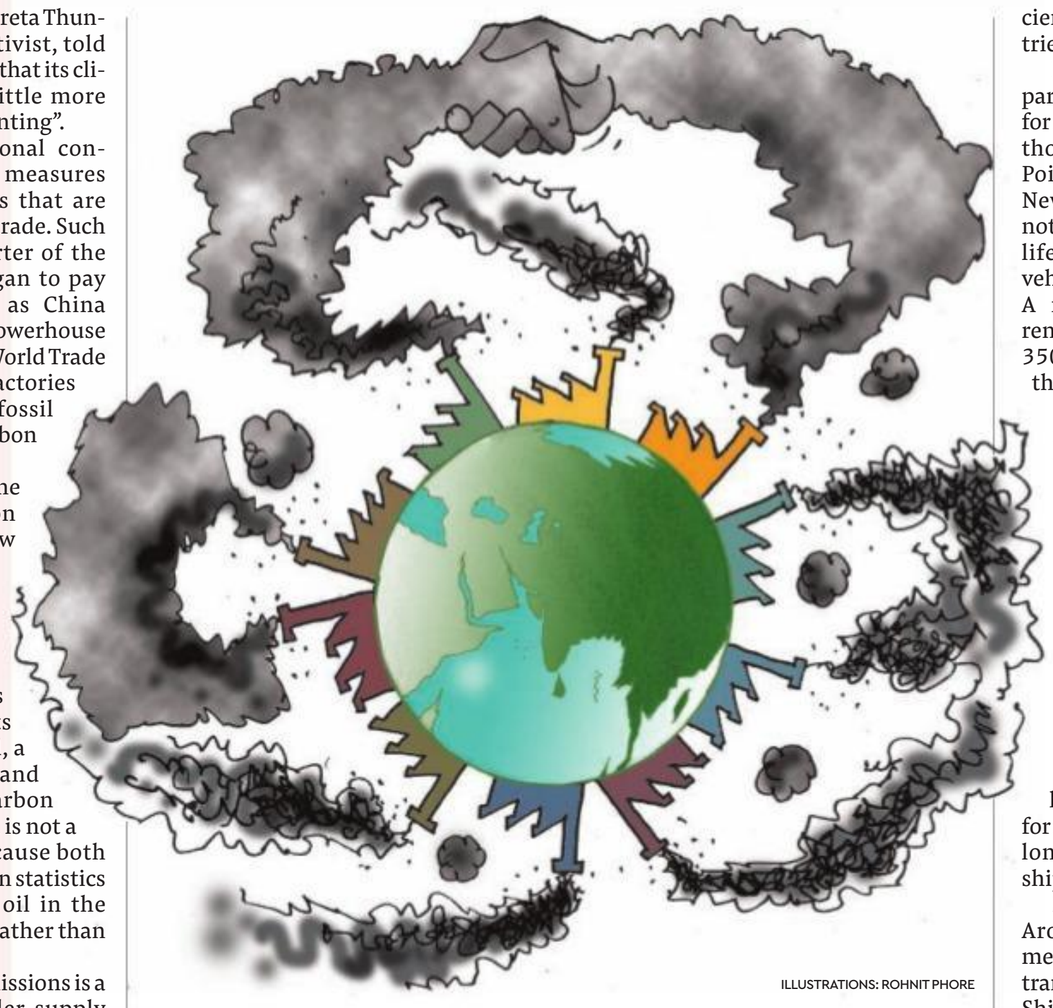

ILLUSTRATIONS: ROHNIT PHORE

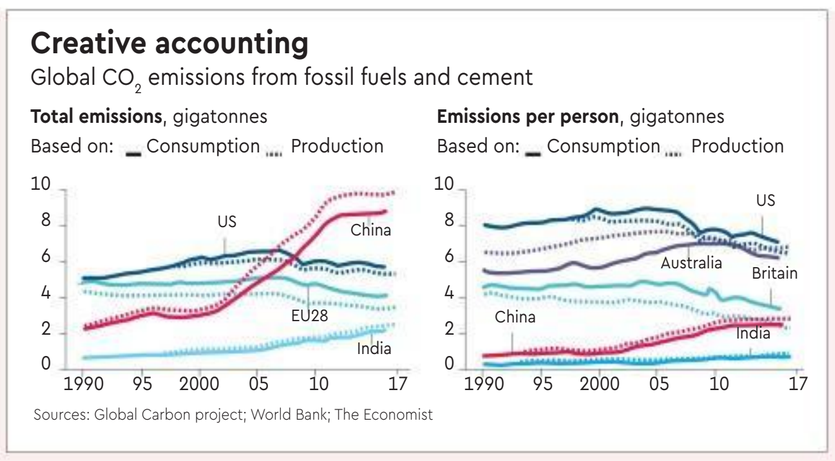

Purdue's data show that cars and car parts exported by China are responsible for nine times more CO2 per dollar than those exported by Germany. Mathieu Poitrat Rachmaninoff, an analyst at Newton Investment Management, notes that on average about half of the lifetime emissions from an electric vehicle come from making the battery. A medium-sized battery made in renewables-rich Sweden emits around 350kg of CO2. For coal-reliant Poland, that figure is over eight tonnes.

To cut emissions, it is therefore necessary to look closely at products' provenance. Sometimes the conclusions are counter-intuitive, as the tomatoes in New Covent Garden Market demonstrate. British tomatoes are grown in heated glasshouses and thus require three times more energy than sun-blessed Spanish ones. Even accounting for transport, local tomatoes are responsible for more emissions. Mike Berners-Lee of Lancaster University points out that a British apple bought in June has typically been in chilled storage for nine months. Keeping it cool for that long emits about as much carbon as shipping an apple from New Zealand.

Modes of transport also matter. Around 87% of the world's freight, measured in tonne-kilometres (a tonne transported one kilometre), goes by sea. Shipping accounts for about 2% of fossil-fuel emissions. But as a means of transport it is carbon-efficient. Producing a tonne of steel in China takes about two tonnes of CO2. Shipping that steel to New York adds only 322kg. Planes account for just 0.1% of the world's tonne-kilometres of international freight, but an outsize share of all emissions. According to figures from the British government, the carbon emissions caused by transporting a given weight by air are about 70 times greater than if it had been shipped. That means sectors reliant on timely delivery, such as fast fashion, are particularly environmentally unfriendly.

Just as governments and scientists are grappling with how to assess trade-related emissions, the world's network of cross-border commerce has been disrupted by America's trade war with China. In the first half of 2019, global trade volumes rose by 1% compared with the prior year, the slowest rate since 2012. But even if trade flows were to fall, it does not follow that global emissions would drop, points out Glen Peters of the Centre for International Climate Research in Norway. Moreover, China produces lots of carbon-saving technology. It is home to eight of the world's ten biggest manufacturers of solar panels, and is pumping money into batteries and electric vehicles. An intensifying economic conflict between America and China could mean the flow of Chinese technology and know-how across borders dries up, hampering mitigation efforts elsewhere.

The trade war could cause multinational firms to shift production away from China. But that might not reduce emissions much, if activity is relocated to other countries that are keen to fuel their export-led growth with coal. Already emissions exports are growing fastest in Bangladesh, India, Indonesia and Vietnam, says Dabo Guan of the University of East Anglia. None of these countries is emitting as much carbon per person as China did when its exports took off, mainly because they burn less coal. But all are attracting labour- and resource-intensive industries such as plastics and electronics, which are leaving China in search of lower wages and less stringent environmental standards.

In the long run the only answer is for all economies, including manufacturing-heavy ones, to shift towards cleaner sources of energy. Trade deals could be used to encourage exporting countries to cut emissions, says Sam Lowe of the Centre for European Reform, a think-tank in London. The eu is considering a carbon "border-adjustment" tax—higher tariffs on goods from countries that do not meet the eu's environmental standards. America's trade deals already allow for penalties on countries that fail to meet their commitments under the Paris climate agreement of 2015—though President Donald Trump shows little interest in using them. The trade deal struck in June between the eu and Mercosur, a South American trade bloc, could be blocked by eu member countries, or meps, unless Brazil does more to protect the Amazon rainforest.

As decarbonisation gets under way in rich countries, emissions embedded in imports will loom larger. Finding ways to curb them will be tricky. But they will become harder to ignore.

THE ECONOMIST

DATA DRIVE

Q1FY20 GDP growth at a 25-quarter low

(At 2011-12 prices; % chg, y-o-y)

Growth estimates are lowered

% chg, y-o-y for FY20 Earlier Revised

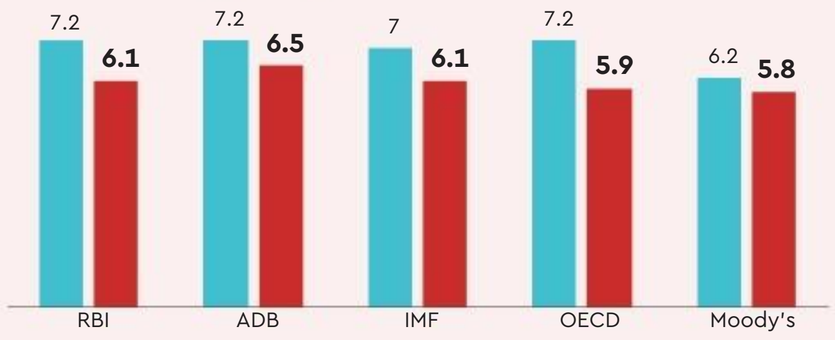

IIP growth in Aug hits lowest level in the current (2011-12) series

% chg, y-o-y

Growth outlook dims

GIVEN THE FACT that the economy grew 5% in the three months to June, the slowest in 25 quarters, and the high-frequency indicators showed no signs of improvement in the subsequent months, most agencies are lowering India's growth projections for the current financial year.

This week, the International Monetary Fund (IMF) cut its estimate for India's growth to 6.1% from 7% projected in July. To address the cyclical weakness, the IMF urged the government to use monetary policy and broad-based structural reforms. Similarly, Reserve Bank of India had cut its FY20 GDP estimates to 6.1% from 7.2%, and the World Bank has lowered its forecast to 6%, down from 7.5% in April.

Various indicators show that the economic slowdown is deeper than expected, and a sustained recovery may take several more quarters unless demand revives. Industrial production contracted 1.1% in August, the worst performance in almost seven years. Demand for consumer goods in rural India has recorded its worst performance in the last seven years and car sales have collapsed for 11 months in a row.

The government will have to address the softening private consumption and the structural factors behind weak investment. Private consumption, the bulwark of the country's growth story in recent years, grew 3.1% in Q1FY20, a four-year low. Much of the cyclical slowdown has affected sectors that are large employment generators and households have been dipping into their savings in the past, while leveraging themselves.

Demand shrinks as consumers are not spending

Pvt final consumption expenditure at 2011-12 prices (% chg, y-o-y)

Auto sales tumble

Domestic sales % chg, y-o-y

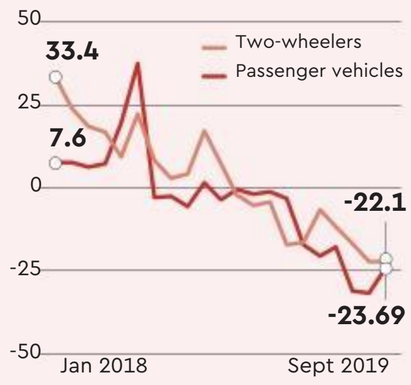

Merchandise exports continue to contract

% chg, y-o-y

HUL's volume growth remains flat

(in %)

Credit growth to industry slows down

% chg, y-o-y

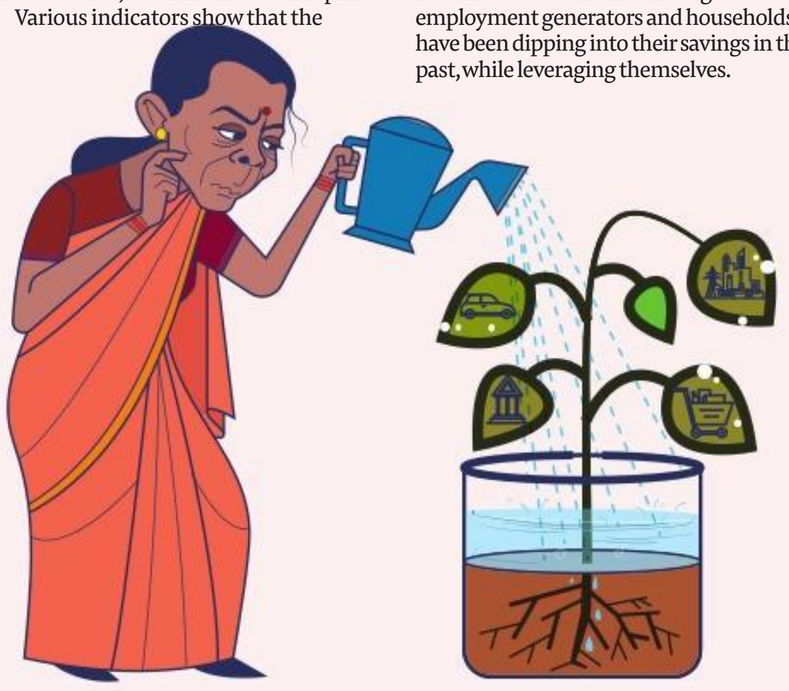

ILLUSTRATION: SHYAM KUMAR PRASAD

Rural FMCG growth hits 7-year low

AI (U+R) AI Urban AI Rural (in %)

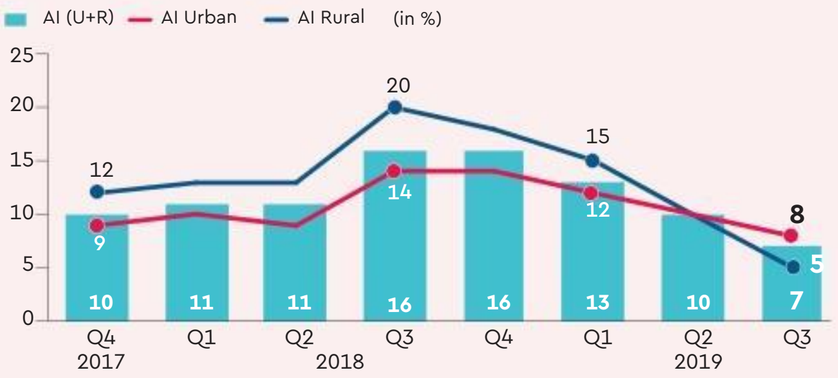

Source: CSO, RBI, ministry of commerce, SIAM, Nielsen and HUL

The Tribune
ESTABLISHED IN 1881

Mexican crackdown

It's back to square one for illegal immigrants

NOTORIOUS for its porous borders, Mexico has taken the unprecedented step of deporting 311 Indian nationals who were staying there illegally, intending to sneak into the US. The drastic action comes amid relentless pressure exerted by the US on its southern neighbours — Mexico, El Salvador, Guatemala and Honduras — to curb the influx of immigrants. President Donald Trump, whose tough stand on immigration dominated his 2016 poll campaign, is banking on this key plank again in his bid for re-election. The US is threatening these countries with tariffs or economic sanctions so that they tighten the noose around asylum seekers.

The deportees' American Dream has been nipped in the bud. A sizeable number of them are reported to be Punjabis, who paid nothing less than Rs 20-25 lakh each to unscrupulous travel agents for being sent to the US by hook or by crook. The Central and state governments will now resume the customary exercise of nailing the agents involved. However, the status quo will inevitably be restored once the dust settles. No lessons have been learnt from the 1996 Malta boat tragedy, which claimed the lives of at least 280 illegal immigrants, or the Panama mishap of 2016. In June this year, the spine-chilling death of six-year-old Gurpreet Kaur near the US-Mexico border — while her mother had left her with other migrants to go in search of water — underlined yet again the extent of desperation.

The frantic pursuit of greener pastures — for which people mortgage their houses or even sell off their land — stems largely from the scarcity of decent work opportunities in their own country. Former PM Manmohan Singh claims that every third urban Indian is jobless, even as Union Minister Ravi Shankar Prasad is busy debunking the National Sample Survey Office report which pegged the unemployment rate at a 45-year high in 2017. The fact that Indians keep risking their life as well as life-savings to work or settle abroad is a disturbing commentary on the economic mess. The government and other stakeholders need to realise the gravity of the situation and come up with ways to arrest the slide.

Case of missing machinery

Plug loopholes to check subsidy misuse

A CURIOUS case of missing farm machinery banks has been detected in Bathinda district of Punjab. These were set up under a Central scheme to tackle stubble burning, a major problem that surfaces every year after the paddy harvesting season. A team of the Central Farm Machinery Training and Testing Institute, Budni, MP, in a report to the state government, has said 34 of these farm machinery banks were not found on the stated address, alluding that they were mostly fictitious. The report has also pointed to other lapses like under-utilisation of implements and their physical availability.

Stubble burning has both environmental and political dimensions. While it has led to a dip in the air quality index, there are political compulsions too like the Assembly bypolls in Punjab and state elections in neighbouring Haryana. In the case of setting up industries, where too banks offer subsidy, certain guarantees are sought. There is physical inspection of the location and methods to recover the loan ascertained. In this case, the farm machinery banks were set up by cooperative societies comprising farmers, self-help groups, farm groups and private entrepreneurs. The government should inquire into the modalities adhered to while giving the subsidy.

Punjab has in the past too reported fictitious cases of beneficiaries in the Shagun scheme, old-age pension scheme and the Atta-Dal scheme. There is also the case of spurious seeds and fertilisers being sold. The survey says the average use of machines was poor. Making the machines available locally is one thing, but renting it costs money. The testing charge for a combine harvester at the Budni centre is around Rs 4 lakh. It shows the costs involved. It is also a common practice for the farm machinery owners in Punjab to lease these to other states so that they do not lie idle. The farmer guide of the Budni centre lists six states — MP, Chhattisgarh, Maharashtra, Jharkhand, Gujarat and Odisha. It would be ideal for an agrarian state like Punjab to have such a centre itself to tackle the problem locally.

BJP juggernaut rolls on

Oppn lacks coordinated strategy to take on the party and its allies

NEERJA CHOWDHURY
SENIOR POLITICAL COMMENTATOR

AT the age of 80, Sharad Pawar has been addressing six-seven rallies a day in Maharashtra, which is going to the polls on October 21, along with Haryana. He gets on the dais with difficulty, sometimes the lectern is brought to where he is seated. He starts the day in the morning and ends after 10 pm when campaigning has to end. He has charged the NCP cadre but nobody knows how many seats his party is going to notch up.

It is his never-say-die spirit in adverse circumstances, which his audiences have noted (I caught up with him in Hadapsar and Mukundpur in Pune). A chat with those in the crowds showed that there was a sneaking sympathy for him, though even his party men are not willing to make a guess on the votes it would generate. His punch lines drew applause and were sharper this time against the Modi-Shah-BJP dispensation. He is clear that he is 'their real target'.

But the 'Maratha strongman' of yesteryear is not looking at victory. He is fighting to retain the relevance of his party in state politics and for his own relevance inside the NCP, given the tensions that surfaced with his nephew Ajit Pawar, after he was named in the MSCB scam. Sharad Pawar voluntarily offered to present himself to the Enforcement Directorate in an attempt to turn the tables on the BJP. But Ajit Pawar succeeded in deflating that move when he threatened to quit politics and go underground. The family managed to paper over the divide, for the moment, but the open dissensions robbed the party—and the opposition in Maharashtra—a chance to counter the mega challenge mounted by the BJP-Shiv Sena, which is set to return to power.

DESPERATE: 'Maratha strongman' Sharad Pawar is fighting to stay relevant.

> The Modi charm has not waned, but many more people are 'tired of words'. Economic distress is beginning to be felt, yet a large number plan to go the BJP way again.

In Karad, in the heart of Maratha land in western Maharashtra, former CM Prithviraj Chavan, is contesting the Assembly elections and is well regarded. Young people tell you they are voting for 'Prithviraj baba' because 'he is a good man who has done good work'. His jeep carried a photo of him sporting the now-rarely-seen old Congress cap, and the words ' Permanent Aamdar'. The Congress is using the slogan of 'Peshwahi' (referring to Devendra Fadnavis' Brahmin credentials) vs 'Shivshahi' (rule of the masses). But he too is facing a challenge, given the BJP's poll machinery, massive resources and strategy to weaken the Maratha base of the Congress and NCP, particularly in Western Maharashtra, and to confine the top leaders of the Congress who are contesting in their constituencies.

While Amit Shah made a point of campaigning in Chavan's constituency, no senior leader of the Congress has been seen around the state in what could be a counter blitz. (Chavan had Yashwant Sinha and Shatrughan Sinha address meetings at Karad.) Rahul Gandhi has addressed a few meetings — again talking about Rafale. Essentially the Congress candidates were left to fend for themselves.

The BJP's strategy has been to wean away those powerful political families in Maharashtra who exercised a hold in their areas through sugar factories cooperatives or educational institutions—once cultivated by Sharad Pawar or the Congress—in the absence of any base of its own. These are leaders afraid of being caught on the wrong side of the law, given the *ghaplas* that have existed in cooperatives or other institutions.

It is not that the Congress and the NCP do not have leaders. It is the absence of a coherent and coordinated strategy on their part to take on the BJP juggernaut. (The story is no different in Haryana.)

And it is the continuing fragmentation in the opposition ranks, even as they face an existentialist crisis, be it the inability to resolve the Hooda versus Tanwar fight in Haryana, or rein in Sanjay Nirupam in Mumbai, which has prevented the opposition from mounting the kind of battle that the Congress did in Rajasthan, MP and Chhattisgarh last year.

Sharad Pawar, hemmed in by dissension within the Pawar clan, could not even push through his offer to Chavan to stand as the NCP-Congress candidate in the Satara Lok Sabha bypoll. With the Satara MP, NCP's Udyan Raje Bhosale, joining the BJP, Chavan was the best candidate to take him on. The battle would have charged the opposition cadre and given a new focus to 'Battle Maharashtra', even as Udyan Raje Bhosale enjoys an emotive connect with people, being the descendant of Chhatrapati Shivaji. But then, resentment has been growing against him, from his defection to potholes on the Pune-Satara road, leading to the cry, 'No hole, no poll, no *jhol*'.

But Pawar had to withdraw his offer because of 'lack of unanimity' in his own party (read in political circles as opposition by Ajit Pawar, who the senior Pawar cannot afford to antagonise).

In the present round of elections, many more people were found expressing their grievances, be it the price rise of food items, hardships due to floods and widespread drought, joblessness, the loss of savings of depositors in the crisis-hit Punjab and Maharashtra Cooperative Bank that has sent shivers down the spine of many. The Modi charm has not waned, but there were many more people saying openly that they were 'tired of words and promises'. In other words, there are signs of economic distress beginning to be felt. And yet, a large number plan to vote the BJP way again.

For all the problem the opposition has had of lack of resources, or losing its leaders to the other side—the Congress has shown signs of a hopelessness not evident before—it is the absence of a coherent, credible opposition to take on the BJP and its allies—both in Haryana and Maharashtra—that lies at the heart of the politics today. This is much more pronounced today than was the case in 2014 or in May 2019.

Movies, golf kit and $5-trillion dream

RAJBIR DESWAL

MY apologies at the outset for having contributed to the now-withdrawn observation of Ravi Shankar Prasad's wanton remark, suggesting the negation of the economic slowdown, saying three movies collected Rs 120 crore. Why am I apologising on behalf of the minister? Well, I was the one who went for a movie that day, verily and not vicariously, contributing to the argument.

Certain generalisations are hard to sell, while certain others are lapped up by the receivers with aplomb. I am reminded of the scene in *Sholay*, when Amitabh Bachchan speaks of the qualities of 'head and heart' of his buddy Dharmendra to bring home the point of his naivety and worthiness to the redoubtable *Mausiji*. In the Rs 120-crore argument, *Mausiji* symbolises the public, who is sought to be fooled! Ravi Shankar stopped just at a point before Lenin, when the latter said, 'A lie told often enough becomes the truth.'

No, no, no! I am not saying that Ravi Shankar told a lie. Well, only politicians can adopt such a course of argument. It's election time in Haryana and I can't stop myself from referring to similar historical burlesque quoted in a vein, akin. Mani Ram Bagri, who was known for his wit, scoffed at Bansi Lal's claims of bringing water from the Bhakra to the tail-end of fields in the state. At a public meeting, he proclaimed to the innocent Haryanvis, 'Brothers and sisters! The water that Bansi Lal brought for your fields has all the electricity taken out of it at the Bhakra Dam, and all that you have is *foka pani* (useless water)!' Not to be outwitted, Bansi Lal controverted, 'Let Mani Ram Bagri touch the electricity wires and know for himself if the electricity had been taken out of the water or not!'

Even if Ravi Shankar wanted to hard-sell his argument, he was well within his right to do so, since politicians know how to twist facts and influence their constituency.

I again recall a reference from Haryana politicians and their 'argument-vending technique'. The *tau* of Haryana, Devi Lal, was then carrying out his 'nyay yuddh' against Indira Gandhi. His appeal among the common masses, and his grip on their collective psyche was quintessential. He had his supporters believe that there was a huge note-vending machine in New Delhi and what he had simply to do, if voted to power, was to turn the machine towards their state, to have enough finances for agricultural development. Obviously, his word was final and the argument was lapped up with no questions asked.

Well, the day I saw that movie and contributed to the Rs 120-crore kitty, being indicative of a 'recovering economy', I had also bought the same day a golf-kit trolley — a fact, which if Ravi Shankar had known, he would have indicated to the fulfilment of the '$5-trillion economy'.

THOUGHT FOR THE DAY

> However beautiful the strategy, you should occasionally look at the results. — **Winston Churchill**

ON THIS DAY...100 YEARS AGO

The Tribune.

LAHORE, SUNDAY, OCTOBER 19, 1919

Mr. Gandhi and the Punjab.

ON another page will be found the text of a letter which Mr. Gandhi has issued to the Press with reference to the cancellation of the Punjab Government's order against him. Mr. Gandhi is perfectly right in saying that the Punjab Government's original order was no discredit to him. To his own people, who had always adored him beyond almost any other living Indian, the order, of course, made no difference. What is noteworthy is that it made no difference even to the highest officials. Sir William Vincent had only a little while before the issue of the order spoken of Mr. Gandhi and his motives in highly eulogistic terms. Mr. Montagu spoke of him in even more eulogistic terms and described him as "my friend, Mr. Gandhi", weeks after the order forbidding his entry into the Punjab was passed and even after he had been described in official documents as a conspirator. Clearly neither could have taken the Punjab Government's order as involving any reflection upon Mr. Gandhi's public character or private virtues.

Mr. Tilak.

THUS a message from Bombay:--"A Bombay Government order in the Judicial Department, dated the 15th October says that the Governor of Bombay in Council is pleased to withdraw the order dated 31st Jan, 1918, served on Mr. Bal Gangadhar Tilak under rule 3 of the Defence of India (Consolidated rules, 1915." The order, it will be remembered, was one prohibiting Mr. Tilak from public speaking in the Bombay Presidency. While congratulating the Bombay Government on this belated act of justice, we may be permitted to express the hope that this decision as well as the cancellation of the Punjab Government's order against Mr. Gandhi mark the initiation of a new policy in India.

LETTERS TO THE EDITOR

Doesn't deserve honour

The BJP's proposal to confer Bharat Ratna on Savarkar is unwarranted and morally unjustified (editorial ' Patricide!', October 18). The saffron ideologue does not deserve the award as he did not play any major role to further the cause of India's freedom struggle. The move smacks of the party's double standards. It is a blatant attempt to both elevate the RSS and embed it in Indian history, and make electoral gains in the upcoming Maharashtra polls. At a time when we are celebrating the 150th birth anniversary of the Father of the Nation, it is farcical to impose Hindu nationalism.

DS KANG, HOSHIARPUR

Godse may be next

The way Bharat Ratna is being conferred, this highest award will soon lose its top place on the honour board. Even thinking of glorifying an accused in the plotting of the assassination of Gandhi is preposterous. Some time back, the award was conferred on three persons, including ex-President Pranab Mukherjee, a staunch Congressman who had extolled the contributions of RSS founder Hedgewar. This clearly points towards the necessity of an RSS stamp on the selection of Bharat Ratna recipients. The day may not be far when even Godse will be recommended for the award.

LAJWANT SINGH, BY MAIL

In his own right

To refer to 'patricide' with regard to the move to award Bharat Ratna to Savarkar is infra dignitatem to the great scholar and freedom fighter. Like my ancestors, those who faced the ire of Muslims during Partition would never pardon the Congress leadership for conceding Punjab and East Bengal, where most of the Hindu population lived for ages. His contribution to the freedom struggle is no less than that of Gandhi, Nehru or Patel. He wrote viciously against British atrocities and was jailed for 10 years. If he apologised to achieve the higher mission of freeing Bharat with more vigour, that should not be a sore point. After all, POWs too return home to a hero's welcome. In recognition of his services to the nation, Indira Gandhi had issued a postage stamp.

COL MAHESH CHADHA (RETD), BY MAIL

Ayodhya most holy

Apropos the editorial ' Patricide' (October 18), the word is a misnomer of the worst order, to be used against a person who was exonerated by the court of all charges. Is it not true that a person is innocent unless proved otherwise? Ayodhya temple is the holiest of all places for the Hindus. Just as there are holy places that are equally sacred for other religions, so is this place sacred for the Hindus, and there ought not to be any doubt in any mind about this factual position based on both history and faith.

VIR PARTAP SINGH, HOSHIARPUR

Figure higher in rural area

Reference 'Every third urban Indian jobless: Singh' (October 18); our former PM has depicted the real picture of jobless youth. The number of unemployed youth in rural India is even much more. No wonder our jobless people are running to foreign countries to earn their livelihood. To come out of this economic crisis, our country needs the services of an economist of the caliber of Manmohan Singh.

FAQIR SINGH, DASUYA

Army restructuring

Apropos 'Army restructuring put on hold' (October 18), the euphoria created by the Modi government in the interim Budget 2019 over the allocation of Rs 4.31 lakh crore for the forces was a *jumla*. The Budget did not have anything substantial for the forces. It is a fact that the government is constrained due to a shortfall in revenues, high fiscal deficit, combined with pressures of regional political players. But it needs to find ways to reduce unproductive costs, reduce manpower with increased mechanisation, unlock revenues from cantonment land and restructure various corps, brigades and regiments to create a modern force. It was heartening to note in Modi 2.0 that the government had finally decided to implement Shekatkar Committee, Ajai Vikram Singh Committee and Naresh Chandra Task Force reports. The recommendations, when implemented, would help in making our armed forces younger and future-ready. Until then, let's pray, we do not get entangled in any war.

RAJIV BOOLCHAND JAIN, ZIRAKPUR

Hunger index rank worrying

India has been ranked 102 out of 117 on the Global Hunger Index, which come under 'serious' state. Integrated Child Development Services programme, mid-day meal and other nutrition schemes still remain lukewarm. On the one hand, we have reached the moon, and on the other, we can't feed our nation. Children are the future of our country and this ranking is a question mark on our future.

RAHUL GABA, KURUKSHETRA

Letters to the Editor, typed in double space, should not exceed the 200-word limit. These should be cogently written and can be sent by **e-mail to: Letters@tribunemail.com**

epaper.tribuneindia.com

India going slow in tackling slowdown

SUSHMA RAMACHANDRAN
SENIOR JOURNALIST

INDIA'S economic woes are simply not ending. The latest bad news is that the country has slipped 10 places on the Global Competitiveness Index. This comes on the heels of official data showing that industrial growth declined in August, the worst performance for a single month in over six years. On the plus side, the country remains high on the Ease of Doing Business Index which indicates that some of the recent measures to cut red tape must be working.

As for the competitiveness index, the scale evolved by the World Economic Forum is much broader and takes into account many more parameters than the one for ease of doing business. Apart from macro-economic stability and innovation, where India scores high, it includes elements like health, skills, labour markets and land use regulations. It is in these areas of long-term development that there are major shortfalls in performance.

For instance, longevity is not as high as in other countries, along with general health parameters being considered inadequate. Similarly, there is rigidity in labour markets and lack of adequate workers' protection has been cited along with low women's participation. At the same time, infrastructure in the area of information technology and communications is not as highly developed as many other countries.

It is in comparison to the other countries that India seems to be standing still in the race while others are racing past us. Apparently, the decline in the standing from the 58th to 68th spot is not because of a dip in performance but because the other countries are doing better. Colombia, South Africa and Turkey, for instance, have improved their standings considerably. Even Bangladesh and Vietnam have picked up speed and enhanced their standings as exporters.

The message is clear. India needs to move forward more strongly on reforms in a whole host of areas. These kinds of indices are always of an indicative nature. It would be difficult to precisely say that one country is doing better than another on the competitiveness scale merely by going by one particular index or comparative study. But such global studies highlight trends. And the trend here is that the other emerging economies are trying to make themselves more attractive investment destinations while at the same time ensuring that they provide a better standard of living to their citizens. Not just are the other developing countries proving to be more attractive to investors, they are also improving the parameters related to long-term sustainable development goals in the areas of health, education and technology adoption.

India's fall in ranking comes along with the release of data showing that industrial output has recorded its worst performance in over six years. Industrial growth in August dipped to 1.1 per cent as compared to 4.6 per cent in the previous month.

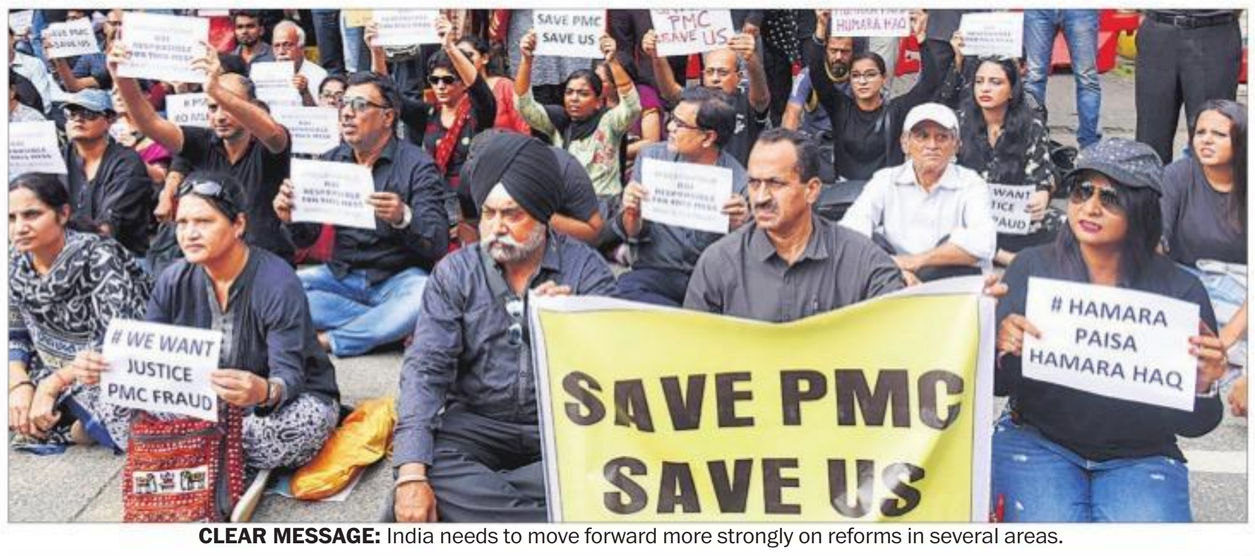

CLEAR MESSAGE: India needs to move forward more strongly on reforms in several areas.

> What is of grave concern is that the focus is not being put sufficiently on improving the quality of human capital. Short-term measures to improve economic growth have already been outlined and the central bank has also played its part by cutting interest rates. That other measures to stimulate the economy are taking a long time to be unveiled is part of the problem.

The manufacturing sector, which contributes largely to the index, fell by 1.2 per cent as against 4.3 per cent in July. The last time the industry had shown such a sharp dip was in February 2013 in the UPA era. One can only hope that this is the bottoming out of the crisis and that more pain is not in store for the economy.

Overall, it is clear that both short- and long-term measures are needed to provide an impetus to the economy. The competitiveness index highlights the long-term shortcomings that need to be dealt with, including skilling. But this must be dealt with at the primary school level, with a higher allocation for basic education going alongside better learning outcomes. The quality of teaching in government schools must be enhanced. The fact that it is possible has been proved by the Delhi Government that has had a remarkable success in this area. It is only when learning outcomes are adequate at the school level that skilling and entrepreneurship can be useful. It may then be possible to also address the issue of low female participation in the workforce.

Similarly, poor health conditions and low life expectancy, with India at the 109th position out of the 141 countries surveyed, are areas where a bigger push is needed. Malnutrition continues to bedevil the country and recent reports regarding stunting of children show that the country's health indicators are in a dismal state.

These are factors that have a long-term impact on the economic growth. And, for the time being, this country is not comparing well with others on these parameters. There is no doubt that there are multiple reasons for the shortfalls in the area of health. THe fact that this is a large country makes the implementation of programmes at the last mile an extremely difficult task. Even so, the performance in rural areas is not adequate in most states.

In this context, one must commend the fact that a significant health intervention, the deworming programme, inspired by the work of Nobel Prize winners Abhijit Banerjee and Esther Duflo has been extended nationwide in the past few years.

What can be achieved in the short run, however, is an improvement in information and communication technology to ensure that the digital divide is bridged more quickly. This is an area where growth has been rapid compared to most other countries. But the lacuna is clearly in extending digitisation to rural and more remote areas of the country.

The fact that India has fallen in the competitiveness index is not a matter of grave concern. What is of grave concern is that the focus is not being put sufficiently on improving the quality of human capital in the country. Short-term measures to improve economic growth have already been outlined and the central bank has also played its part by cutting interest rates. Other measures to stimulate the economy are apparently also on the anvil but the fact that these are taking a long time to be unveiled is part of the problem.

With the economy has been in free fall for quite some time, early action is of essence. In addition, the need for a longer-term vision is imperative. The index indicates that other countries are gearing up to meet the challenges of a slowing global economy. It is high time India does the same.

Inevitably, Rahul on the comeback trail

RASHEED KIDWAI
SENIOR JOURNALIST & AUTHOR

> The seemingly bizarre scenario of the son replacing the mother and then the son picking up the threads again has the backing of many powerful persons within the Congress. Rahul's exit as the AICC chief has not diminished his position. Most members of his core team have found parking places within the main organisation or in Priyanka Gandhi's team.

THESE are not interesting, but incredible times in the Congress. Just as everyone thought that the 87th president of the AICC had become a footnote in history, Rahul Gandhi is showing signs of staging a comeback. So far, Rahul has been the sole Gandhi scion to campaign in the run-up to the Maharashtra and Haryana Assembly polls.

Rahul's loyal band of supporters, including the young guns, are looking at the post-October 24 scenario with interest and a sense of anticipation when the election results of these two states will be announced.

The Congress poll prospects in Haryana and Maharashtra are not looking too bright, yet they will have a serious bearing on internal party equations. Abject failure of the likes of regional satraps like Bhupinder Singh Hooda, Selja, and Prithviraj Chavan has a potential for the Congress craving more for dependence on the Gandhi family than revolt or desertions.

Chances of the likes of Shashi Tharoor, Jyotiraditya Scindia, Jairam Ramesh and Salman Khurshid, who are occasionally ranting about a sense of drift in the grand old party, opting for a signature campaign to force a leadership change within the party, are minimal. As per the Congress constitution, 15 per cent of the AICC delegates can requisition an AICC session to discuss the leadership issue. Arjun Singh, ND Tiwari, Sheila Dikshit, ML Fotedar and others who were opposed to PV Narasimha Rao, when he was the Congress president, had tried using this instrument in 1994.

SOLE GANDHI CAMPAIGNER: Rahul has been busy canvassing in the run-up to the Haryana and Maharashtra polls, to be held on October 21.

In his book, *The Other Side of the Mountain*, Salman Khurshid, a third-generation Congress leader, had taken a gentle swipe at his former party colleagues who chose to switch sides. Khurshid had quoted Sir Thomas Moore's comment on Richard Roper who was appointed attorney-general of Wales during the former's trial for treason as portrayed in Robert Bolt's play *Man for all Seasons*, "For Wales? Why Richard, it profits a man nothing to give his soul for the world...but for Wales?"

Four years later, Khurshid is sounding like a dissident, but there is no 'Wales' for him in sight. His ranting comes at a time when the Congress is facing a grim battle in Maharashtra and Haryana.

In this context, Khurshid's lamentation over Rahul Gandhi's abrupt exit as AICC chief is not without significance. For some, Khurshid is not being a goofy Mani Shankar Aiyar of the Gujarat Assembly poll fame, but trying to position himself as a possible beneficiary in the near future.

Theoretically speaking, if there is no demand for a change of leadership or a contest in spite of a continuous poor showing, the inhouse party managers have the potential of citing Sonia Gandhi's fragile health to facilitate Rahul's comeback.

Some Congress insiders claim that Sonia is reluctant to stay on as interim chief till the Delhi Assembly polls, scheduled for February 2020. The timing of the next round of leadership crisis appears to be within a time-frame of the next six months.

It is a matter of record that between May 25 and August 10 this year, the Congress miserably failed to find a non-Gandhi successor to Rahul. Eventually, an informal head count was done and an overwhelming majority favoured the continuation of Sonia or Rahul. It was a decision that the party forced upon 10, Janpath.

Informed sources say that it took Rahul a while to accept the hopeless dependence of the party as he believed that a new, non-Gandhi family alternative would emerge.

To be fair to the Congress leaders, the period between July 3, when Rahul's resignation as party chief was publicly accepted by the CWC, and August 9, several inhouse exercises were conducted to resolve the leadership issue. Several proposals were mooted that envisaged a working president and four vice-presidents.

At one point, Mukul Wasnik emerged as a frontrunner of sorts, but then the wise counsel within the Congress junked the idea on the grounds of being 'impractical'. In their view, Sonia, Rahul (both Lok Sabha MPs) and Priyanka's presence (as AICC general secretary) in active politics would make the position of the working president and vice-presidents vulnerable and draw bad optics. The move was shelved and Sonia was, much against her own wishes, persuaded to take over.

The seemingly bizarre scenario of the son replacing the mother and then the son picking up the threads again has the backing of many powerful persons within the Congress.

Rahul's exit as the AICC chief has neither diminished his own position nor led to the dismantling of his team. Over the past two months, most members of his core team have found parking places within the main organisation or in Priyanka Gandhi's team.

The names of Sonia and Priyanka were included in the official list of star campaigners for the Congress submitted to the Election Commission.

But so far, Sonia has not made an appearance. Priyanka has not even campaigned in the 21 Assembly bypolls taking place in Uttar Pradesh. Sonia has not been out in the field since 2017 when during the Uttar Pradesh Assembly election campaign, she was taken ill at Varanasi. One exception was made during the 2019 Lok Sabha polls when she addressed a rally in Telangana.

Sonia was scheduled to address an election rally in Haryana on Friday, but she did not turn up due to 'unavoidable reasons', as tweeted by the state party unit. Privately, some Congress leaders view Priyanka's absence from the Haryana and Maharashtra Assembly poll campaigns as 'intriguing'.

Rahul Gandhi holds the dubious distinction of being the first member of the Nehru-Gandhi family to have quit as Congress president. He may create another record of sorts, for returning to the high office. Unless of course, someone like Shashi Tharoor pads up to force a contest.

QUICK CROSSWORD

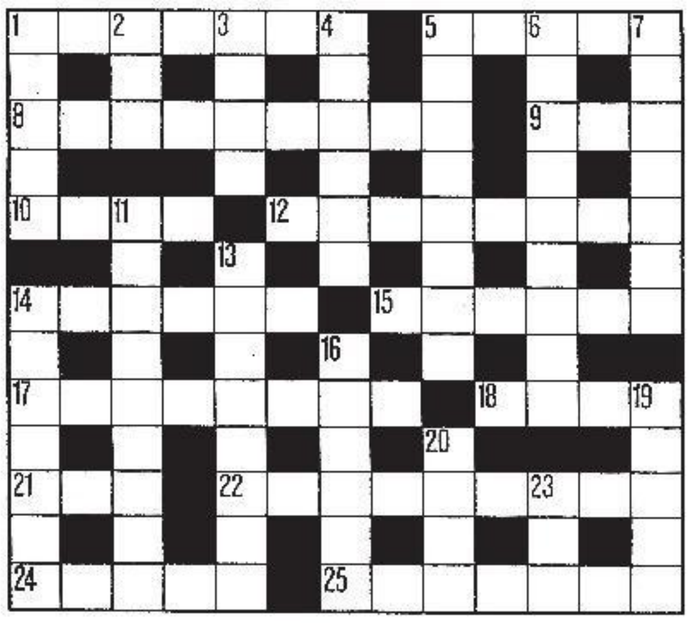

ACROSS
1 Vacantly silly (7)
5 Exclude (5)
8 Wrinkles by the eyes (5,4)
9 Massage (3)
10 Stage in a process (4)
12 Write hastily (8)
14 Portent (6)
15 Bequest (6)
17 Compelling force (8)
18 Rebuff (4)
21 Climbing plant (3)
22 Legendary outlaw (5,4)
24 An expedient (5)
25 Eating implements (7)

DOWN
1 Known truths (5)
2 In addition (3)
3 Expel (4)
4 Rough drawing (6)
5 Giving full particulars (8)
6 Stupid person (9)
7 Theft with violence (7)
11 Having keen sight (5-4)
13 Keep safe (8)
14 Put to practical use (7)
16 A North African language (6)
19 Ill (5)
20 Tiny biting fly (4)
23 Metal-bearing mineral (3)

YESTERDAY'S SOLUTION

Across: 1 Communal, 5 Plus, 9 Prune, 10 Catcall, 11 Old-fashioned, 13 Renoir, 14 Despot, 17 Green fingers, 20 Angular, 21 Abide, 22 Tang, 23 Seasoned.
Down: 1 Copy, 2 Maudlin, 3 User-friendly, 4 Accost, 6 Learn, 7 Solidity, 8 Stained glass, 12 Braggart, 15 Portion, 16 Fierce, 18 Egg on, 19 Mend.

SU DO KU

				9				1
	9				1	4		
1			3		8	2		
2		9		6			1	
	6			7		5		9
		4	5		7			3
		8	4				2	
3				2				

V. HARD

CALENDAR

OCTOBER 19, 2019, SATURDAY

- Vikrami Samvat 2076
- Shaka Samvat 1941
- Ashwin Shaka 27
- Kartik Parvishte 3
- Hijari 1441
- Krishan Paksh Tithi 5, up to 7.44 am
- Pari Yoga up to 2.09 am
- Mrighshikha Nakshatra up to 5.40 pm
- Moon in Gemini sign.

YESTERDAY'S SOLUTION

1	9	7	4	2	3	6	8	5
5	4	8	6	7	1	9	3	2
6	3	2	8	9	5	7	1	4
9	8	6	1	5	2	3	4	7
7	1	3	9	4	8	2	5	6
4	2	5	3	6	7	1	9	8
3	7	9	5	8	6	4	2	1
2	5	1	7	3	4	8	6	9
8	6	4	2	1	9	5	7	3

FORECAST

SUNSET: SATURDAY 17:47 HRS
SUNRISE: SUNDAY 06:28 HRS

Sunny | Partly Cloudy | Cloudy | Rainy | Foggy

CITY	MAX	MIN
Chandigarh	31	19
New Delhi	33	21
PUNJAB		
Amritsar	32	18
Bathinda	33	20
Jalandhar	32	19
Ludhiana	31	19
HARYANA		
Bhiwani	32	20
Hisar	35	20
Sirsa	33	20
HIMACHAL PRADESH		
Dharamsala	23	14
Manali	19	05
Shimla	20	10
JAMMU & KASHMIR		
Jammu	30	18
Leh	—	—
Srinagar	21	07
UTTARAKHAND		
Dehradun	31	16
Mussoorie	21	11

TEMPERATURE IN °C